Chap-2

द्वितीय अध्याय

हिन्दी आत्मकथा, परिभाषा, विभावना और विकास

द्वितीय अध्याय

हिन्दी आत्मकथा परिभाषा, विभावना और विकास

प्रास्ताविक

हमारे शोध प्रबंध का विषय है – "मैत्रेयी पुष्पा की आत्मकथाओं के परिप्रेक्ष्य में उनके उपन्यास साहित्य का अध्ययन"। अतः प्रस्तुत अध्याय में हमारा उपक्रम आत्मकथा विधा के सैध्धान्तिक निरूपण के उपरांत आत्मकथा साहित्य के इतिहास को रेखांकित करने का रहेगा। शोध प्रबंध मैत्रेयी पुष्पा की आत्मकथाओं से सम्बद्ध है। फलतः प्रस्तुत अध्याय में समकालीन हिन्दी साहित्य में महिला लेखिकाओं के द्वारा प्रणीत आत्मकथाओं के ऐतिहासिक विकास को रेखांकित एवम् विश्लेषित करने का भी रहेगा। समकालीन हिन्दी साहित्य में महिलाओं द्वारा लिखित आत्मकथाओं पर संक्षिप्त दृष्टिपात किया जाएगा। मैत्रेयी पुष्पा की आत्मकथाओं का विश्लेषण तृतीय अध्याय में रहेगा। अतः प्रस्तुत अध्याय में नारी लेखन के तहत महिला लेखिकाओं द्वारा लिखित आत्मकथाओं की उपादेयता बताते हुए नारी-विमर्श को स्पष्ट करने का रहेगा। इसके उपरांत अध्याय के अंत में सम्रगावलोकन की प्रकिया द्वारा समग्र अध्याय से कुछ निष्कर्षों को प्रस्तुत किया जाएगा।

आत्मकथाविधाः तत्व एवम् अभिलक्षण

काव्य या साहित्य के अंतर्गत जहाँ गद्यविधाओं का उल्लेख हुआ है, गद्य की अनेक विधाओं में आत्मकथा विधा का भी उल्लेख किया गया है। मोटे तौर पर आत्मकथा उसे कहा जाता है जिसमें कोई व्यक्ति विशेष अपने जीवन के संदर्भ में अपनी ही कथा को प्रस्तुत करता है। उसमें व्यक्ति स्वयं अपने जीवन के प्रसंगों को उद्घाटित करता है। मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है, वह अरण्यवासी तो है नहीं। वह समाज में अपने घर-परिवार, सगे-सम्बन्धी और मित्र तथा परिचितों के बीच में रहता है। जन्म से लेकर जहाँ तक की भी कथा कही गयी है उसमें व्यक्ति अनेक लोगों के परिचय में आता है, उसमें कुछ तो उसके घर-परिवार के अपने लोग होते हैं और कुछ बाहरी लोग होते हैं। अतः आत्मकथाकार कथा तो अपनी कहता है परंतु उसके साथ कई-कई लोग भी संदर्भित हो जाते हैं। इन संदर्भित पात्रों की बात आत्मकथाकार अपने निजी दृष्टिकोण से करता है। उन लोगों का उसके साथ किस प्रकार का व्यवहार रहा है उसके आधार पर उसका निरूपण होता है। आत्मकथा में आत्मकथाकार अपनी कथा कहता है परंतु अपनी कथा कहने से पहले वह संक्षेप में अपनी वंश परम्परा पर भी प्रकाश डालता है। वंशपरम्परा की

चर्चा करते हुए वह अपने दादा-परदादा आदि कुछ पूर्वजों की बात भी कर सकता है। जैसा कि हरिवंशराय बच्चन ने भी अपनी आत्मकथा के प्रथम खंड़ – "क्या भूलूँ क्या याद करूँ" में किया है। आत्मकथा चूँकी आत्मकथाकार की अपनी व्यक्तिगत कथा है, अतः उसमें ईमानदारी और प्रमाणिकता का होना बहुत ही आवश्यक हैं। आत्मकथाकार को चाहिए कि वह अपने जीवन के सभी प्रसंगों को, सभी पक्षों को, अच्छे और बुरे, निखालसता एवम् तटस्था के साथ बिना किसी लाग-लपेट और लिहाज के तटस्थापूर्वक प्रस्तुत कर दें। आत्मकथा में आत्मश्लाघा का तत्व उसके कलात्मक मूल्यों को व्याघात पहुँचा सकता है। यह मनुष्य की सामान्य प्रवृत्ति है कि वह अपने जीवन के उज्जवल पक्षों की चर्चा तो खूब उत्साहपूर्वक एवम् रस ले-लेकर करता है परंतु अपने जीवन के अनुज्जवल पक्षों के उद्घाटन में वह कतरा जाता है। अतः आत्मकथा लेखन के क्षेत्र में केवल उसे ही पदार्पण करना चाहिए, जिसमें अपने जीवन के अंधेरेपक्षों को प्रकट करने का साहस हो। इस संदर्भ में हम महात्मा गांधीकी आत्मकथा "सत्य के प्रयोग" और अमृताप्रीतम की आत्मकथा "रसीदी टिकट" का उल्लेख कर सकते हैं। मोहनदास करमचंद गांधी ने अपनी आत्मकथा में चोरी के प्रसंगों की, माँस खाने के प्रसंगों की, बीड़ी-सिगरेट जैसे व्यसनों की तथा, अपनी कामुकता के अतिरेक की चर्चा भी निड़रता और साहसता के साथ की है। इस संदर्भ में बर्टेण्ड रसेल की आत्मकथा भी उल्लेखनीय कही जा सकती है। किसी को लग सकता है कि आत्मकथा लिखना तो सबसे आसान हो सकता है, क्योंकि उसमें केवल अपने बारे में ही लिखना है परंतु ऐसा नहीं है, जैसा कि ऊपर बताया गया है अपने जीवन के अंधेरेपक्षों को सामाजिक रूप से प्रकट करने के लिए बहुत ही हिम्मत और साहस चाहिए। अतः आत्मकथा लिखना आसान नहीं अपितु टेढ़ी खीर है। गुजराती के महान तत्वचिंतक और निंबधलेखक मणिभाई नभुभाई द्विवेदी ने अपनी आत्मकथा में अपने जीवन के कुत्सित प्रसंगो की भी खुलकर चर्चा की है। दूसरी स्त्रियों के साथ उनके संबंधों का भी उन्होंने खुलकर वर्णन किया है। उसमें कुछ तो उनकी मित्र पत्नियाँ और रिश्तेदारों की पत्नियाँ थीं। अतः मणिभाई ने जब यह आत्मकथा अपने मित्रों के सामने रखी तो उन्होंने तय किया कि मणिभाई के निधन के उपरांत पचास साल बाद ही उसका प्रकाशन किया जाय क्योंकि उसके कारण कइयों के जीवन पर पारिवारिक संकट आ सकता था। कहने का अभिप्राय यह है कि आत्मकथा लिखना सरल नहीं है। आत्मकथा लिखना बड़े उत्तरदायित्व का काम है। "दायित्व बोध" हीन व्यक्ति को इस क्षेत्र में कभी नहीं आना चाहिए। आत्मकथाकार जब अपनी कथा लिखता है तो साथ ही साथ वह अपना समसामायिक (Contemporary) इतिहास भी लिख रहा होता है। अपने समय की सामाजिक, राजनैतिक, साहित्यिक, शैक्षिक, सांस्कृतिक गतिविधियों का लेखा-जोखा भी उसमें रह सकता है। अतः अच्छी प्रामाणिक आत्मकथा वही लिख सकता है जो अपनी दैनंदिनी या डायरी लिखता हो। हाँलाकि डायरी भी अपने आप में एक अलग साहित्यिक विधा है। गुजराती में "महादेव भाई की डायरी" अंत्यंत प्रसिद्ध है जो महात्माजी के अंत्येवासी है। उसमें महात्माजी के जीवन की अनेक रोजाना घटनाओं का

उल्लेख मिलता है। गांधीजी अपनी आत्मकथा लिख पाये उसमें इस डायरी से भी उन्होंने काफी सहायता ली होगी। पश्चिम के तो अनेक लेखक अपनी डायरियाँ लिखते थे। प्रसिद्ध जर्मन कवि रिल्के की डायरी इस संदर्भ में उल्लेखनीय कही जा सकती है। मादामबउरी के लेखक ने भी अपनी डायरी लिखी है जो मादामबउरी की रचना प्रक्रिया को समझने में काफी उपयोगी हुई है।

आत्मकथा को अंग्रेजी में Autobiography कहते हैं। उसमें Biography शब्द के आगे Auto उपसर्ग लगा हुआ है। Biography शब्द का अर्थ जीवन चरित्र होता है। अतः Autobiography का अर्थ होगा वह जीवनचरित्र जो जीवन चरित्र्यकारने अपने विषय में स्वयं लिखा हो। "सत्य के प्रयोग" महात्मा गांधी ने स्वयं अपने संदर्भ में लिखा है। अतः वह Autobiography है। परंतु यदि महात्मा गांधी के संदर्भ में उनके जीवन को लेकर कोई दूसरा व्यक्ति लिखता है तो उसे Biography कहा जाएगा। हिन्दी में मुंशी प्रेमचंद के संदर्भ में मदनगोपाल तथा अमृतराय ने क्रमशः "कलम के मजदूर" और "कलम का सिपाही" नाम से दो जीवनियाँ लिखी है। जिनको हम मुंशी प्रेमचंद की Biography कह सकते हैं। इस तरह जीवनी के लिए अंग्रेजी में Biography और आत्मकथा के लिए Autobiography शब्द मिलते हैं। सरल शब्दों में कहें तो जीवनी में लेखक और चरित्रनायक अलग-अलग होते हैं; जबकि आत्मकथा में लेखक और चरित्रनायक एक ही होते हैं।

उपर्युक्त दोनों विधाओं के लिए विपुल, गहरे, अध्ययन की आवश्यकता रहती है। उनके लेखकों पर एक वैश्विक राष्ट्रीय सामाजिक दायित्वबोध का दबाव रहता है। जिस प्रकार इतिहास लेखक वस्तुतथ्यता (Mater of facts) की उपेक्षा नहीं कर सकता उसी प्रकार आत्मकथा लेखक भी वस्तुतथ्यता को भुला नहीं सकता। उनको अतिरंजनाओं, अतिशयोक्तियों और मिथक तत्वों से बचना होगा।

आत्मकथाकार का वैयक्तिक परिवेश अत्यंत महत्वपूर्ण होता है। उसमें वैयक्तिक, पारिवारिक जानकारियों के अतिरिक्त आत्मकथाकार का जो परिवेश है, उसका भी महत्वपूर्ण योगदान रहता है। आत्मकथाकार जिस क्षेत्र से सम्बद्ध होता है, वह परिवेश उसमें सवाँगी रूप से उभरकर आना चाहिए। इस तरह राजनीतिज्ञ समाजसुधारक, संत-महात्मा, तथा लेखक कवि के संदर्भ में उन लोगों के परिवेश पूर्णरूपेण अभिव्यक्ति पाऐंगे।

हिन्दी साहित्य कोश भाग-1 में डॉ. अजीतकुमार ने आत्मकथा के संदर्भ में दिया है। आत्मकथा लेखक के अपने जीवन से संबद्ध वर्णन है। आत्मकथा के द्वारा अपने बीते हुए जीवन का सिंहावलोकन और एक व्यापक पृष्ठभूमि में अपने जीवन का महत्व दिखलाया जाना संभव है। डायरी, जर्नल, संस्मरणपत्र आदि रचना प्रकार आत्मकथा के ही स्फुट रूप हैं। इन्हें व्यक्तिगत प्रकाशन Personal Revolution वाले साहित्य के

अंतर्गत रखा जा सकता है; क्योंकि जाने-अनजाने आत्मांकन करना ही इन विविध रचना प्रकारों का उद्देश्य होता हैं। जीवन-चरित्र आत्मकथा से इस अर्थ में भिन्न है कि किसी व्यक्ति द्वारा लिखी गई किसी अन्य व्यक्ति की जीवनी जीवन चरित्र है और किसी व्यक्ति द्वारा लिखी गयी स्वयं अपनी जीवनी आत्मकथा है। आत्मचरित और आत्मचरित्र हिन्दी में आत्मकथा के अर्थ में प्रयुक्त प्रारंभिक शब्द है और तत्वतः आत्मकथा से भिन्न नहीं है। एक सूक्ष्म अंतर कदाचित यह है कि आत्मचरित कहनेवाली रचना किंचित विश्लेषणात्मक और विवेकप्रधान होती थी और अब आत्मकथा कहे जाने वाली अपेक्षया अधिक रोचक और सुपाठय होती है। आपबीती, अपने साथ बीती हुयी सामान्यतः किसी असुखद घटना का वर्णन है। ".....की रामकहानी" और ".....की कहानी उसकी जबानी" शीर्षक से लिखी गयी रचनाओं की शैली तो आत्मकथा की होती है पर किसी अन्य के जीवन पर प्रकाश डालती है। वास्तव में ऐसी रचनाएँ प्रथम पुरूष सर्वनाम में लिखित जीवनियाँ है और उचित यह है कि इन्हें आत्मकथा या जीवनी शैली में लिखी गई स्फुट गद्यरचनाओं की संज्ञा दी जाय। आत्मकथा, जीवनी या पत्रशैली में निबंध भी लिखे जा सकते हैं और कहानी उपन्यास भी, पर स्वतंत्र विधा की दृष्टि से आत्मकथा आदि रूपों का साहित्य में अपना अलग स्थान है।"[1]

भारतीय साहित्यकोश (संपादक डॉ. नगेन्द्र) में आत्मकथा के संदर्भ में दिया गया है – "जीवन चरित्र के दो रूप हैं – जीवनी और आत्मकथा। लेखक के अपने जीवन से संबंधित ब्यौरेवार विवरण, संस्मरण, डायरी, पत्रावली आदि सभी आत्मकथा के अंतर्गत आते हैं; पर आत्मकथा प्राय : उसी पुस्तक को कहते हैं जिसमें लेखक अपने जीवन का ब्यौरा प्रस्तुत करता है, भले ही उसमें आंतरिक जीवन या चरित्र पर अधिक बल दिया गया है। कार्लाइल के शब्दों में सफल चरित्र का लिखना उतना ही कठिन है जितना सफल जीवन का अपने जीवन में निभाना; आत्मकथा लिखना तो और भी दुष्कर है क्योंकि प्रथम तो व्यक्ति की स्मृति सदा विश्वसनीय नहीं होती; दूसरे कटु सत्यों का उद्घाटन करना, अपने दुःखों, दोषों और चारित्रिक छिद्रों को प्रस्तुत करना कठिन है और तीसरे अपने पौरूष और महत्व जताने का लोभ संवरण करना दुष्कर होता है। फिर भी विश्व-वाङ्मय में अनेक प्रामाणिक आत्मकथाएँ जैसे रूसो तथा गांधी की आत्मकथाएँ लिखी गयी हैं, जो रोचक होने के साथ-साथ प्रामाणिक भी हैं।[2]

उपर्युक्त परिभाषा में निम्नलिखित तथ्यों को विशेषतया रेखांकित किया गया है -

(1) आत्मकथा में लेखक स्वयं अपने जीवन को ब्यौरेवार प्रस्तुत करता है; (2) आत्मकथा लेखन में संस्मरण, डायरी, पत्र आदि सहायक हो सकते है; (3) सफल आत्मकथा को लिखना सफल जीवन जीने के समान ही कठिन है; (4) आत्मकथा लिखना अंत्यत दुष्कर है; क्योंकि अपनी कमियों और चारित्रिक छिद्रों को उद्घाटित करने का साहस कुछ बिरले ही कर सकते हैं;। उपर्युक्त विवेचन में जो कहा गया है कि सफल आत्मकथा

लिखना सफल जीवन जीने के समान है, तो उसका तात्पर्य यह है कि किसी – न – किसी क्षेत्र में जो विशेष रूप से सफल रहे हैं उनकी आत्मकथा ही समाज को उपयोगी हो सकती है। ऐसे महान व्यक्तियों के जीवन में कुछ छिद्र हो तो भी उनकी महानता की ओट में वे छिप जाते हैं, या कम से कम उनके शेष अनुकरणीय आदर्श जीवन को देखते हुए पाठक और समाज उन छिद्रों को दरगुजर कर सकता है। सरल शब्दों में कहें तो चारित्रिक छिद्रों का अनुपात वहाँ कम होता है। सकारात्मक पक्षों का बाहुल्य होता है। तभी आत्मकथा साहित्य प्रेरणादायी ठहरता है। सफल व्यक्तित्व संपन्न आत्मकथाकार के चारित्रिक छिद्र और स्खलन भी प्रेरणादायी होते हैं; क्योंकि उनसे उसकी विश्वसनीयता और मानवीयता बढ़ जाती है। अगर इस प्रकार के छिद्र और कमियाँ ना हो तो व्यक्ति को लोग देवता या भगवान बना देंगे। किन्तु मानव सहज कमजोरियों के कारण पाठक और समाज यह बात ग्रहण कर सकता है कि इस प्रकार की कमजोरियों से भी मनुष्य का लौह-संकल्प उसे महान बना सकता हैं। व्यक्ति को भगवान या देवता मान लेने से समाज, देश और संस्कृति का जो सर्वाधिक नुकशान होता है वह यह कि लोग-बाग मानने लगते हैं कि यह तो अपौरूषेय काम है; और कोई अवतारी पुरूष ही उसे कर सकता है। सामान्य मनुष्य के बूते के बाहर हैं। अतः मानवीय पुरूषार्थ से व्यक्ति का विश्वास उठ जाता है।

Compact Oxford Reference Dictionary में Autobiography को इस प्रकार परिभाषित किया गया है – Biography is an account of a person's life written by that person'[3] अर्थात् आत्मकथा में व्यक्ति स्वयं अपने जीवन का लेखा-जोखा प्रस्तुत करता है। आत्मकथा लेखक को Autobiographer कहा जाता है और उस प्रकार की रचना को Autobiographical कहा जाता है।

डॉ. गुलाबराय ने अपने "काव्य के रूप" नामक ग्रंथ में जीवनियों के प्रकार के अंतर्गत जीवनी के एक रूप में "आत्मकथा" का उल्लेख किया है, यथा "जीवन चरित्रों की कई विधाए और रूप हैं। लेखक की दृष्टि से तो जीवनी और आत्मकथा ये दोनों प्रधान रूप है। जीवनी कोई दूसरा आदमी लिखता है और आत्मकथा स्वयं लिखी जाती है।"[4] इसी संदर्भ में डॉ. गुलाबराय लिखते है – साधारण जीवन चरित्र से आत्मकथा में कुछ विशेषता होती है। आत्मकथा लेखक जितना अपने बारे में जान सकता है उतना लाख प्रयत्न करने पर भी कोई दूसरा नहीं जान सकता। किन्तु इसमें कहीं तो स्वाभाविक आत्मश्लाघा की प्रवृत्ति बाधक होती है और किसी के साथ शील-संकोच आत्म प्रकाश में रूकावट डालता है। यद्यपि सत्य के आदर्श से तो दोंनो ही प्रवृत्तियाँ निंद्य हैं। तथापि अनावश्यक आत्मविस्तार कुछ अधिक अवांछनीय है। शीलसंकोच के कारण सत्य और उसके अनुकरण के लाभ से वंचित रखना भी वांछनीय नहीं कहा जा सकता। साधारण जीवन लेखक की अपेक्षा आत्मकथा लेखक को ऊब से बचाने और अनुपात का अधिक

ध्यान रखना पड़ता है । उसे अपने गुणों के उद्‌घाटन में आत्मश्लाघा या अपने मुंहमियां मिट्ठू बनने की दूषित प्रवृत्ति से बचना चाहिए । जीवनी लिखनेवाले को अपने गुण कहने में सचेत रहने की आवश्यकता है । (इसी कारण इन पंक्तियों के लेखक ने अपने आत्मकथा संबधी निंबधो में अपनी असफलताओं का ही उद्‌घाटन किया है । उस पुस्तक का नाम भी "मेरी असफलताएँ" है ।)[5]

आत्मकथा के संदर्भ में आंग्ल लेखक अब्राहम काउली के निम्नलिखित शब्दों को तथ्यपूर्ण बताया हैं । पंड़ित जवाहरलाल नेहरु ने – "किसी आदमी को अपने बारे में खुद लिखना मुश्किल भी है और दिलचस्प भी क्योंकि अपनी बुराई या निंदा लिखना खुद हमें बुरा मालूम होता है और अगर हम अपनी तारीफ करें तो पाठकों को उसे सुनना नागवार मालूम होता है ।"[6]

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर हम आत्मकथा के निम्नलिखित अभिलक्षणों तक पहुँच सकते हैं-

(1) व्यक्ति जीवन से सम्बद्ध जो साहित्यरूप हैं उनमें जीवनी, आत्मकथा, रेखाचित्र, संस्मरण, डायरी, पत्र इत्यादि की गणना कर सकते हैं । प्रथम दो के अतिरिक्त जो साहित्यरूप हैं वे अपने आप में स्वतंत्र भी हो सकते हैं और प्रथम दो के लेखन में उपादेय भी हो सकते हैं ।

(2) जीवनी को अंग्रेजी में Biography कहा गया है । उसमें लेखक किसी अन्य नामांकित व्यक्ति के जीवन पर उसके जीवन के जन्म से लेकर मृत्यु पर्यन्त के ब्यौरों को ठोस प्रमाणों और दस्तावेजों के आधार पर प्रस्तुत करता है । इस प्रकार जीवनी लेखक एक हद तक इतिहासकार की भूमिका अदा करता है ।

(3) आत्मकथा को अंग्रेजी में Autobiography कहा गया है । उसमें लेखक स्वयं अपने जीवन को ब्यौरेबार प्रस्तुत करता है । आत्मकथा के दो भयस्थान हैं – आत्मश्लाघा और आत्मसंकोच ।

(4) ये दोनों विधाएँ अंत्यंत दुष्कर हैं । जीवनी लेखन में लेखक को अपने चरित्रनायक का सूक्ष्म अध्ययन करना पड़ता है । उससे संबंधित समग्र जानकारी का आद्यंत अनुशीलन करना होता है । जीवनी लेखन व्यक्ति पूजा का साधन न बने उसके लिए उसे बहुत सचेत रहना पडता है । आत्मकथा लिखना तो जीवनी से भी अधिक कठिन है । यह बात किसी को विपरीत लग सकती है, क्योंकि जहाँ जीवनी में सामग्री हेतु वर्षों अध्ययन में लग जाते हैं, वहां आत्मकथा लेखन में अपने बारे में लिखने के कारण सामग्री के लिए इधर-उधर झाँकना नहीं पड़ता । परंतु यही तो कठिन है । आत्मकथा लेखन असि-धार पर चलने के समान है । जैसा कि ऊपर पंड़ितजी ने लिखा है आत्मकथा लेखक यदि अपनी बुराई या

निंदा करता है तो वह उसके लिए कठिन होता है और यदि वह अपनी तारीफ करता है तो सुनने वालों को वह नागवार गुजरता है । अपने चारित्रिक छिद्रान्वेषण में लेखक को नैतिक साहस का परिचय देना होता है । जिस प्रकार रस्सी पर चलनेवाले नट को Balance का ध्यान रखना पडता है ठीक उसी प्रकार आत्मकथा लेखक को भी इसी प्रकार की "नट साधना" करनी होती है ।

आत्मकथा साहित्य की परम्परा :

हिन्दी जीवनी साहित्य का आरंभ तो मध्यकाल से हो गया था । "चौरासी वैष्णवन की वार्ता", "दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता", "भक्तमाल" तथा प्रियदासजी द्वारा प्रणीत उसकी टीका आदि इसके उदाहरण हैं । परंतु इनका शुमार जीवनी साहित्य में होगा । जहाँ तक आत्मकथा का सवाल है हिन्दी की प्रथम आत्मकथा अकबर के समकालीन आगरा निवासी जैन कवि बनारसीदासजी की है । उन्होंने अपनी इस आत्मकथा को "अर्ध्दकथानक" नाम दिया है जिसमें उन्होंने अपनी बुराइयों और कमजोरियों का निःसंकोच भाव से उद्‌घाटन किया है । परंतु यह आत्मकथा पद्यात्मक है, जबकि इधर के आत्मकथा साहित्य को हम गद्य की विधा मानते हैं । तुलसीदासजी के भी दो पद्यमय जीवन निकले थे, किन्तु वे अब प्रामाणिक नहीं माने जाते ।[7] वस्तुतः आधुनिक आत्मकथा साहित्य का प्रारंभ भारतेन्दु युग से माना जा सकता है, स्वयं भारतेन्दुजी ने "कुछ आपबीती कुछ जगबीती" संज्ञक आत्मवृतांत लिखा था । सन् 1819 में हमें स्वामी दयानंद की आत्मकथा प्राप्त होती है । डो. चंद्रभानु सोनवणेकर के मतानुसार इसे हम खड़ी बोली की प्रथम आत्मकथा कह सकते हैं ।[8] भारतेन्दुयुग में हमें प्रतापनारायणमिश्र की आत्मकथा मिलती है, जो कि अधूरी है । दूसरी आत्मकथा किशोरी लाल गोस्वामीजी की मिलती है । इस आत्मकथा में उन्होंने बताया है कि अपने स्वतंत्र विचारों के लिए उन्हें कितना कष्ट उठाना पड़ा था । उनके पिताजी ने उनको भारतेन्दु हरिशचन्द्र से मिलने की मनाही कर रखी थी । क्योंकि वे भारतेन्दुजी को नास्तिक समझते थे । अतः उनको मिलने के लिए वे छिप-छिपकर आधी रात को जाते थे । जिसके लिए उनको दरबान को घूस भी देनी पड़ती थी ।[9]

भारतेन्दुयुग के पश्चात् द्विवेदीयुग मे डॉ. श्यामसुंदरदास की आत्मकथा "मेरी आत्मकहानी" उपलब्ध होती है । इसके अतिरिक्त श्रद्धानंदजी द्वारा लिखित "कल्याणमार्ग के पथिक" नामक आत्मकथा प्राप्त होती है । भाई परमानंदजी द्वारा लिखी हुई "आपबीती" भी उल्लेखनीय कही जा सकती है । जिसमें उन्होंने अपने साहसपूर्ण जीवन के घात प्रति घातों का आकलन किया है । श्री वियोगी हरि की आत्मकथा भी "मेरा जीवन प्रवाह" नाम से प्रकाशित हो चुकी है ।[10] इसके अतिरिक्त सत्यानंद अग्निहोत्री कृत "मुझ में देवजीवन का विकास" नामक आत्मकथा उपलब्ध होती है ।

वस्तुतः देखा जाय तो आत्मकथा साहित्य का विकास द्विवेदीयुग और उसके बाद हुआ है। इस कालखण्ड़ में जो आत्मकथाएँ हमें उपलब्ध होती हैं, उनको हम दो वर्गों में विभक्त कर सकते हैं –

(क) हिन्दी साहित्यकारों की आत्मकथाएँ और

(ख) तत्कालीन नेताओं की आत्मकथाएँ।

(क) हिन्दी साहित्यकारों की आत्मकथाएँ : इन आत्मकथाओं में डॉ. राजेन्द्र माथुर कृत आत्मकथा, महापंड़ित राहुल सांस्कृत्यायन कृत "मेरी जीवन यात्रा", मार्क्सवादी लेखक यशपाल कृत "सिंहावलोकन" सेठ गोंविददास कृत "आत्मनिरीक्षण" ; पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी कृत "मेरी अपनी कथा" ऐतिहासिक उपन्यासकार चतुर सेन शास्त्री द्वारा प्रणीत "मेरी आत्मकथा" ऐतिहासिक उपन्यासकार वृंदावनलाल वर्मा द्वारा लिखित "अपनी कहानी" डॉ. नगेन्द्र कृत "अर्ध्दकथा" पंडित गोपालप्रसाद व्यास द्वारा लिखित "कहो व्यास कैसी कही?" पाण्डेय बैचेन शर्मा उग्र कृत "अपनी खबर" , श्री दौलत द्वारा लिखित "दौलत दरबार", अजित कौर द्वारा लिखित "खाना बदोश" डॉ. रामविलास शर्मा कृत "अपनी धरती अपने लोग", डॉ शिवपूजन सहाय कृत "मेरा जीवन" भीष्मसाहनी कृत "आज के अतीत" आदि को उल्लेखनीय कहा जा सकता है।[11] इधर कुछ अनेक खंड़ीय आत्मकथाएँ भी आयी हैं। हिन्दी के सुप्रसिद्ध कवि - गीतकार डॉ. हरिवशं राय बच्चन की आत्मकथा चार खण्ड़ों में आयी है, यथा – "क्या भुलूँ क्या याद करूँ", "नीड़ का निर्माण फिर", "बसेरे से दूर", "दशद्वार से सोपान तक"। इसी तरह डॉ. रामदरश मिश्र की आत्मकथाएँ भी 4 खण्ड़ों में प्रकाशित हुई है, यथा – "जहाँ में खड़ा हूँ" , रोशनी की पगदंड़ियाँ, टूटते बनते दिन, "उत्तरपथ"। डॉ. राजेन्द्रयादव यद्यपि आत्मकथा लिखने के पक्ष में नहीं थे। किन्तु उनके साहित्यिक जीवन के कुछ प्रसंगों का आलेखन उन्होंने "मुड़-मुड़ के देखता हूँ" में किया है। डॉ. राजेन्द्रयादव ने इसे आत्मकथा न कहते हुए "आत्मकथ्य" कहा है।

(ख) इसी कालखण्ड़ में हमें कुछ देशनेताओं और समाज सुधारकों की आत्मकथाएँ भी उपलब्ध होती हैं। इन आत्मकथाओं में महात्मागांधी की आत्मकथा "सत्य के प्रयोग" एक क्लासिक रचना मानी गई है। उसकी गणना विश्व-साहित्य की सर्वोत्तम आत्मकथाओं में होती है। "तुम मुझे खून दो, मैं तुम्हें आज़ादी दूँगा।" का नारा देनेवाले वीर सुभाषचंद्र बोस ने अपनी आत्मकथा "तरूण के स्वप्न" नाम से लिखी है। उस समय की राजनीतिक गतिविधियों को समझने के लिए यह आत्मकथा उपयोगी सिद्ध हो सकती है। सशस्त्र क्रांति में विश्वास रखनेवाले क्रांतिकारी शहीद रामप्रसाद बिस्मिल की आत्मकथा भी प्राप्त

होती है। बनारसीदास चतुर्वेदी के शब्दों में यह हिन्दी का एक सर्वश्रेष्ठ आत्मचरित है।[12] इन्हीं दिनों में भवानी दयाल संन्यासी की आत्मकथा "प्रवासी की आत्मकथा" के नाम से प्रकाशित होती है। सत्यदेव परिव्राजक की आत्मकथा "स्वातंत्र्य की खोज में" भी स्वाधीनता आंदोलन को यथार्थतः चित्रित करनेवाली आत्मकथा है। पंडित जवाहरलाल नेहरू की "मेरी कहानी" नामक आत्मकथा भी विश्वसाहित्य में अपना स्थान रखती है। स्वतंत्र्य भारत के द्वितीय राष्ट्रपति डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन की आत्मकथा "सत्य की खोज" भी उल्लेखनीय कही जा सकती है। देशनेताओं की आत्मकथाओं की परम्परा में राजर्षि पुरुषोत्तमदास टंड़न की आत्मकथा "आग से लपटें" भी एक महत्वपूर्ण आत्मकथा कही जा सकती है; जिससे तत्कालीन सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक इत्यादि परिस्थितियों पर प्रकाश पड़ता है। इनमें से कुछ आत्मकथाएँ हिन्दी में अनुदित रूप में भी मिलती हैं। इधर पिछले दो दशकों में अनेक आत्मकथाएँ आई है। सुप्रसिद्ध आधुनिक कथाकार शरद देवड़ा की आत्मकथा "आकाश एक आपबीती" सन् 1992 में प्रकाशित हुई थी। उसी वर्ष काशीनाथसिंह के जीवन के कुछ प्रसंगों "याद हो कि न याद हो" शीर्षक से प्रकाशित हुए जिसे संपूर्ण आत्मकथा तो नहीं परंतु आत्मकथा का अंश या खंड़ कह सकते है। सन् 1995 में दलित कथाकार मोहनदास नैमिशराय की आत्मकथा "अपने-अपने पिंजरे" प्रकाशित हुई, जिसमें दलित जीवन के कुछ रोमांचक, पीड़ा से युक्त प्रसंगों का आलेखन हुआ है। इसके पूर्व सुप्रसिद्ध दलित लेखक एवम कवि ओम प्रकाश वाल्मीकि की आत्मकथा "जूठन" भी प्रकाशित हुई है, जिसे पढ़कर मराठी दलित कथा साहित्यकार शरणकुमार लिंबाले की आत्मकथा "अक्करमाशी" की याद ताजा हो जाती है। सन् 1997 में मराठी साहित्यकार किशोर शांताबाई काले की आत्मकथा "छोरा कोल्हाटी का" सामने आती है। किशोर ने अपने नाम के पीछे पिता का नाम न लिखकर माता का नाम लिखा है जिसे हम एक क्रांतिकारी कदम कह सकते हैं। बहुतों को याद हो कि सुप्रसिद्ध Film maker संजय लीला भणसालीने भी अपने पीछे माता का नाम रखा है और अब तो यह कानून भी बन गया है कि कोई चाहे तो अपने पीछे अपनी माँ का नाम लगा सकता है। मोहन राकेश की मृत्यु के उपरांत उनके कुछ लेख, संस्मरण, आरंभिक एकांकी उपन्यास "काँपता हुआ दरिया", फिल्मलेख, डायरी, अधूरे लेख एवम् कविताओं इत्यादि को डॉ. जयदेव तनेजा ने "एकत्र" नामक ग्रंथ में संकलित किया है। उसमें मोहन राकेश का आत्मकथ्य भी है। उसी वर्ष इस्मतचुगताई की आत्मकथा "कागजी है पेहरन" प्रकाशित होती है जिसमें मुस्लिम समाज में स्त्री की स्थिति के संदर्भ में कुछ अनकही बातें कहीं गई हैं।

21 वीं शताब्दी के प्रथम दशक में कुछ महत्वपूर्ण आत्मकथाओं का प्रकाशन हुआ है। यहाँ ध्यान रहें हम समकालीन हिन्दी लेखिकाओं की आत्मकथाओं का जिक्र नहीं कर रहे हैं क्योंकि परवर्ती पृष्ठों में उस पर अलग से एक उपशीर्षक के तहत हम उन सबका जिक्र करने जा रहे हैं। "मैंने मांडु नहीं देखा" स्वदेश दीपक की आत्मकथा का एक खंड़

है जिसमें उन्होंने अपने खंड़ित जीवन (कोलांस) का निरूपण किया है। "आत्मा का ताप" चित्रकार सैयद हैजर रज़ा की आत्मकथा है जो हमें एक अलग कला विश्व में ले जाती है। उसी प्रकार की आत्मकथा वसंत पोतदार की है जो "कुमार गंधर्व" नाम से प्रकाशित हुई है जहाँ "आत्मा का ताप" में चित्रकला को केन्द्र में रखा गया है। वहाँ प्रस्तुत कथा में संगीत को केन्द्रस्थ रखा गया है। "आई मोहन गाता जाएगा" तथा "लायी हयात आये" क्रमशः कथाकार विद्यासागर नोटियाल और लक्ष्मीधर मालवीय की आत्मकथाएँ हैं। सन् 2004 मे महान क्रांतिकारी विचारक रूसो की आत्मकथा प्रकाशित हुई है। जिसका अनुवाद युगांक धीर ने किया है। सन् 2003 में सुप्रसिद्ध कथाकार भीष्मसाहनी की आत्मकथा "आज के अतीत" प्रकाशित हुई है। उनकी आत्मकथा में एक प्रकार की सहजता और "आम आदमीपन"का भाव दृष्टिगोचर होता है। उनकी ये आत्मकथा "तमस्" और "हानूश" जैसी क्लासिक रचनाओं की रचना प्रकिया को समझने में सहायक होती है। आत्मकथाओं से आमतौर पर आत्मस्वीकृतियों की अपेक्षा की जाती है; इस पुस्तक में वे अंश विशेष तौर पर पठनीय हैं जहाँ भीष्मजी अंकुठ भाव से अपने भीतर बसे "नायक पूजाभाव" को स्वीकारते हैं, बचपन में बड़े भाई (बलराज साहनी) के प्रभाव स्वरूप जो भाव उनके मन में बना, वह बाद तक उनके साथ रहा। हर कहीं वे "हीरो को तलाशने लगते हैं"। भीष्मजी के मास्को प्रवास का ब्यौरा सोबियत संघ को जानने के लिए भी पढ़ा जाना चाहिए। इस से हम साम्यवाद के प्रति रूसी नागरिकों की आरंभिक निष्ठा के बारे में तो जानते ही हैं वे कुछ सूत्र भी हमें दिखायी देते हैं जो धीरे-धीरे सोवियेट समाज में प्रकट हुए और अन्ततः उसके पतन का कारण बने।"[13]

ऊपर ओमप्रकाश वाल्मीकी और मोहनदास नैमिशराय की आत्मकथाओं का उल्लेख किया गया है। इसी परम्परा में सुप्रसिद्ध मराठी साहित्यकार दयापवार की आत्मकथा "अछूत"(अनूदित) भी उल्लेखनीय कही जा सकती है। इसके अलावा श्योराजसिंह बैचेन तथा सूरजपाल चौहान की आत्मकथाएँ भी दलित जीवन के रहस्यों को परत दर परत खोलने में सहायक प्रमाणित हो सकती हैं। प्रसिद्ध दलित लेखक भगवानदास की बहुचर्चित आत्मकथा "मैं भंगी हूँ "एक उल्लेखनीय रचना कही जा सकती है। जिसमें उन्होंने भंगी जाति के उद्भव, उत्थान और पतन की कहानी को दर्द के साथ उकेरा है। लगभग सन् 2007 के आसपास रूपनारायण सोनवणेकर की दलित आत्मकथा "नागफणी" काफी चर्चित रही है। दलित लेखको की आत्मकथा में यह स्पष्ट हुआ है कि किस प्रकार धर्म और शास्त्र के नाम पर उनका शारीरिक, मानसिक, आर्थिक जातीय शोषण हुआ है। उन पर अमानवीय एवम् जघन्य अत्याचार हुए हैं और अस्पृश्यता के नाम पर उन्हें कदम-कदम पर अपमानित होना पड़ा है।.भारत की जाति व्यवस्था के मूल में वर्णाश्रम व्यवस्था ही रही है। इसलिए तमाम-तमाम दलित लेखकों ने इस अमानवीय एवम् अतार्किक सामाजिक व्यवस्था की भर्त्सना की है।[14]

समकालीन हिन्दी लेखिकाओं द्वारा प्रणीत आत्मकथाएँ :-

हमारे पोंगा पंड़ित टाईप लोग जिस "कलियुग" को सबसे ज्यादा गरियाते हैं; किन्तु कलियुग का वह आधुनिकयुग (नव जागरण के बाद को) वस्तुतः दलितों और नारियों के लिए तो "स्वर्णयुग" ही समझा जाना चाहिए। इस युग में जो सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक आंदोलन हुए, पश्चिम में जो नारीमुक्ति आंदोलन हुआ। "ब्लेक लिटरेचर" जो सामने आया। इन सबके कारण आधुनिकरण में विशेषतः साहित्य में दो विमर्श उभरकर आये हैं – नारी विमर्श और दलित विमर्श। आधुनिक काल की नवीन परिस्थितियों से समुत्पन्न अनुकूलता के कारण नारी शिक्षा एवम् दलित शिक्षा दोंनों में गुणात्मक वृद्धि हुई है, जिसके कारण आधुनिकरण में इन दोनों वर्गो में लेखकों, लेखिकाओं की मानों बाढ़ सी आ गई हैं। हिन्दी साहित्य के किसी भी कालखण्ड़ में इतने दलित लेखक कवि और नारी लेखिकाएँ नहीं हुई हैं। यहाँ हमारा सरोकार समकालीन लेखिकाओं तक महदूद रहेगा। पूर्ववर्ती पृष्ठों में हम प्रेमचदंयुग, प्रेमचंदोत्तर युग, साठोत्तरी युग इत्यादि की लेखिकाओं का उल्लेख कर चुके हैं। अतः यहाँ समकालीन लेखिकाओं में निरूपमा सेबती, शशिप्रभा शास्त्री, दीप्ति खण्ड़ेलवाल, ममता कालिया, मृदूलागर्ग, राजीशेठ, सूर्यबालासिंह, चित्रा मुद्गल, समा कौल, मधू कांकरिया, नासिरा शर्मा बिंदुभट्ट, महेरून्निशा परवेज़, सुश्री शरदसिंह, कुसुम अंसल, मैत्रेयी पुष्पा, प्रभाखेतान, आदि की गणना कर सकते हैं; जिनमें से कुछेक लेखिकाओं ने आत्मकथा विधा पर लेखनी चलाने का साहस जुटाया है। एक बात ध्यातव्य रहे कि जिस तरह इधर लेखिकाओं और दलित लेखको की संख्या में गुणात्मक अभिवृद्धि हुई है। ठीक उसी प्रकार इस तबक्कें के लेखक लेखिकाओं ने आत्मकथा विधा में भी प्रचुर मात्रा में लिखा है। यह अकारण नहीं है। सहस्त्रादिक वर्षो से धर्म, शास्त्र, परंपरा, रीतिरिवाज के नाम पर इन तबकों का भयंकर रूप से उत्पीड़न हुआ है। उनको हर तरह से सताया और दबाया गया है। अतः अब जब अनुकूल विचारप्रवाह आये हैं तब उनकी वाचा का खुलना सहज और स्वभाविक माना जाएगा। गेंद को जितनी ताकत से जमीन पर फेंका जाता है उतनी ही ताकात से वह ऊपर उछलता है ठीक यही मनोविज्ञान इस में भी कारणभूत है। 20 वीं शताब्दी के अंतिम दशक में हमें समकालीन लेखिकाओं की कई आत्मकथाएँ प्राप्त होती हैं। इन आत्मकथाओं में सुप्रसिद्ध समकालीन लेखिका "कुसुम अंसल" की आत्मकथा "जो कहा नहीं गया" एक महत्वपूर्ण आत्मकथा है। स्वयं लेखिका के मतानुसार उसमें उन्होंने अपने अनुभवों का कच्चा चिट्ठा खोलकर रख दिया है। "आमुख" में उन्होंने दावा किया – "ज्यों कि त्यों धर दीन्ही चदरिया"। इस आत्मकथा में हमें लेखिका अंसल और मिसिस अंसल के बीच का संघर्ष दृष्टिगोचर होता है। इस संघर्ष को अभिव्यक्त करने की दिशा में वे कहीं - कहीं आत्मसमर्थन करती भी नजर आती है। इस आत्मकथा का एक दोष यह है कि इस में सामाजिक, राजनीति के संदर्भ आत्मकथा का परिवेश नहीं बन पाये हैं। मात्र कुसुम से ऊपर उठकर श्रमकार शिल्पीसृष्टा समझने का दंभ

आत्मकथा को एकांगी बना देता है । तथ्य, वर्णन अधिक है चाहे वह वृंदावन में कुंजबिहारी का मंदिर हो, अथवा गंगा का तट हर जगह दार्शनिक विवेचन और दार्शनिकों तथा अन्यलेखकों के लंबे- लंबे उद्धरण इसके कथारस में बाधक होते है ।[15]

"लगता नहीं हैं दिल मेरा" कृष्णा अग्निहोत्री की भूमिकाबद्ध आत्मकथा है । उर्दू शायर बहादुर शाह ज़फर की गज़ल के मुखड़े से लेखिका के शायराना अंदाज का पता चलता है । लेखिका का कहना है कि "लिखने का उद्देश्य किसी को दुःख पहुँचाना या लांछित करना नहीं है.....तब भी यदि किसी को कुछ चोट या कष्ट पहुँचे तो यह समझकर कि उसने मुझे कितना बड़ा घाव दिया है मुझे क्षमा कर दें ।"[16] उनकी इस आत्मकथा में नारी के संपूर्ण अस्तित्व को मात्र उसकी देह तक सीमित कर देने की पीड़ा आद्यंत कसकती रही है । कृष्णाजी ने अपनी इस आत्मकथा में अपूर्णता, रिक्तता का बोध, बार-बार प्रेम में धोखा खाना, अटूट धैर्य, लगन और मेहनत इन सबके सूक्ष्म ब्यौरे दिए हैं । आत्मकथा का सामाजिक, राजनैतिक परिवेश वहीं तक सीमित है जहाँ तक वह लेखिका के संबंध का विषय है । नैतिक संस्कार से लेकर व्यक्तिगत अभिरूचियों तक को लेखिका ने अपनी आत्मकथा तक समेटा है । लेखिका के पास सूक्ष्म निरीक्षण दृष्टि अवश्य है जो व्यक्ति और वातावरण की सूक्ष्मतम हलचल को भी पकड़ने में सक्षम है । प्रेम में बार-बार धोखा खाने के बावजूद वह स्वयं को अभियोग नहीं देती वरन उन स्थितियों को अपराधी सिद्ध करती हैं जो स्त्री को मात्र भोग्या स्थापित करती है । लेखिका की आत्मकथा में साफगोई का प्रयत्न अवश्य है । किन्तु इसके मूल में कहीं न कहीं स्वयं को स्थापित करने की इच्छा भी सर्वोपरि रही है । आत्मविश्लेषण की प्रकिया में वह अपने प्रति कठोर नहीं हो पायी है । इसे इस आत्मकथा का एक कमज़ोर पक्ष समझना चाहिए । अपनी क्षमताओं का परिचय तो लेखिका देती है । किन्तु त्रुटियों और स्खलनों के लिए परिस्थितियों को दोषी ठहराती है । लब्बोलुबाब यह कि अनेक कमजोरियों के रहते हुए भी प्रस्तुत आत्मकथा नारी विमर्श के कई पृष्ठों को उजागर करने में सफल रही है ।[17]

पद्मा सचदेव की आत्मकथा – "बूंद बावड़ी" भी आत्मकथा साहित्य की एक महत्वपूर्ण कड़ी है । प्रस्तुत आत्मकथा में उनके जीवन से सम्बद्ध महत्वपूर्ण कालखण्ड़ की अंर्तकथा भी जुड़ी हुई है । पद्मा सचदेव डोगरी की कवि कवयित्री है, अतः इस आत्मकथा मे कहीं कविता की लय है तो कहीं नाटकीय आयरनी है । यह आत्मकथा मात्र आत्मकथ्य नहीं है । अपितु लेखिका के विकास की गाथा है । जीवन की देखी सुनी या बीती हुई घटनाएँ किस प्रकार लेखक की रचना का अंग बन जाती हैं, कभी चेतन तौर कभी अचेतन तौर पर, यह हिसाब पकड़ में नहीं आता । प्रस्तुत आत्मकथा से यह भी प्रतीति होती है कि सृजन में अपने जीवन को खपाना साहित्य की अनिवार्यता और नित्यधर्मिता है । लोकगीतों की रचना में उनके भीतर बैठा हुआ "लोक" किस प्रकार अभिव्यक्ति पाता है, इसकी पूरी झलक इसमें मिल जाती है । उनकी आत्मकथा की

विशेषता है कि रेणु की भाँति परिवेश भी यहाँ एक पात्र बन गया है, जम्मू-कश्मीर, बम्बई, दिल्ली सभी स्थान लेखिका की आत्मा के साथ गहराई से जुड़ गये है । "बूँद बावड़ी" का प्रतीक व्यष्टि-समष्टि समबन्धों को सफलता से रूपायित करता है । आत्मकथा में वर्ण्य-विषय की एकाग्रता निरंतर बनी रही है । यदा-कदा लेखिकाने भोले भाव से आत्म निरीक्षण भी किया है और मनोभावों को स्पष्ट अभिव्यक्ति दी है । विपरीत परिस्थितियों में जीते हुए उन्हें अपने वश में करने की अदम्य जिजीविषा लेखिका के अंतर्मन का दर्शन कराती है । निष्कर्षतः कहा जा सकता कि "बूंद बावड़ी एक सफल आत्मकथा है ।[18]

कौशल्या बैसंत्री की आत्मकथा "दोहरा अभिशाप" दलित महिला की पहली आत्मकथा है ।[19] आत्मकथा का शीर्षक "दोहरा अभिशाप" इसलिए है कि कौशल्या बैसंत्री अस्पृश्य समाज की नारी है । एक अभिशाप अस्पृश्यता का और दूसरा अभिशाप नारी होने का । हमारे यहाँ भले "यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते, रमन्ते तत्र देवताः" कहा जाता रहा हो, परंतु धर्म और शास्त्र के नाम पर अनेक प्रकार की निर्योग्यताएँ (Disabilities) दलितों और स्त्रियों पर थोपी गयी हैं । कौशल्या बैसंत्री मूलतः मराठी भाषी लेखिका है । आत्मकथा के प्रारंभ में ही उन्होंने स्पष्ट कर दिया है कि उनकी यह आत्मकथा सीधी सरल शैली में लिखी हुई है और उसमें "स्व" का विश्लेषण करने के बजाय "भोगे हुए यथार्थ" को शब्दों में उतारने का प्रयत्न किया है । सुश्री निशा नाग ने इस आत्मकथा के संदर्भ में लिखा है – "सामाजिक, सांस्कृतिक और दलित चेतना सम्बन्धी राजनैतिक परिवेश का सन्निवेश आत्मकथा को प्रमाणित बनाता है । अस्पृश्य समाज में पैदा होने के कारण लेखिका को जो यातनाएँ सहनी पड़ी है उन्हें लेखिका ने प्रस्तुत किया है । किन्तु अंर्तमंथन और अंतर्द्वन्द्व यहॉ स्पष्ट नहीं है । आत्मकथा एक गाथा की भाँति अधिकतर बाहरी घटनाओं का मूल्यांकन करती है चाहे वह माँ-बाबा का श्रमकर जीवन हो अथवा लेखिका का स्कूल जाने का प्रसंग । मराठी दलित समाज में प्रचलित खान-पान, रीतिरिवाज छुआ-छूत के अनेक स्तरों का सजीव वर्णन उसमें है । दलितवर्ग में प्रचलित सामाजिक मान्यताओं और धार्मिक अंधविश्वासों का ब्यौरा भी यह आत्मकथा प्रस्तुत करती है। घर और बस्ती में रहनेवाले अनेक लोगों की अंतर्कथाएँ होते हुए भी प्रकरणों का तादात्मय है । आंबेडकर का प्रभाव और दलित समाज के बौद्ध बनने की मानसिकता दोंनों का ही प्रत्यक्ष दर्शन यहाँ है । एक स्त्री और दलित समुदाय सम्बन्धित होने के कारण लेखिका को जो कुछ भी सहना पड़ा है वह "दोहरा अभिशाप" के रूप में प्रस्तुत है । कहीं भी आत्मश्लाधा, आत्म समर्थन और आत्मप्रताड़ना इसमें नहीं है । घटनाओं का सपाट वर्णन करके भी यह आत्मकथा रोचक बन पायी है ।[20] डॉ. राजेन्द्रयादव ने इस आत्मकथा के संदर्भ में कहा है कि स्त्रियाँ घर को टूटने से बचाने के लिए बहुत सी ज्यादतियाँ बर्दाश्त करती हैं । वे अपने परिवारों और बच्चों का ख्याल रखते हुए कोशिश करती हैं पति से सम्बन्ध विच्छेद करने की नौबत न आए । एक उर्दू शायर का हवाला देते हुए उन्होंने एक शेर भी उदधृत किया है –

तर्के के तालुकात, मुझे सोचना पड़ा" इस आत्मकथा की भाषा को श्री यादव प्रवाहपूर्ण और अच्छी बतातें हैं। उन्होंने "दोहरा अभिशाप" के संदर्भ में कहा हैं कि हमारे समाज में नैतिकता के सारे मापदंड स्त्रीशरीर से तय होता है और उनका निर्वाह केवल स्त्री को ही करना पड़ता है। सेक्स के मामले में स्त्री का जो शोषण होता है उस अनुभव को केवल स्त्री ही जानती है। मुझे उम्मीद है कि दलित स्त्रियाँ भी उस अनुभव को लिखेंगी।[21] सुप्रसिद्ध दलित लेखक श्यौराजसिंह बैचेन ने प्रस्तुत आत्मकथा के संदर्भ में लिखा है – "मैंने इस आत्मकथा की पांडुलिपि कई बार पढ़ी थी। कौशल्या बैसंत्री के जीवन संघर्ष ने मुझे प्रभावित किया था। इस आत्मकथा का संकेत "हमने भी इतिहास बनाया है" नामक ग्रंथ से मुझे मिला था। जिसमें बैसत्रीजी की बाबा आंबेड़कर के आंदोलन में सक्रियता की झलक थी। ऐसे व्यक्ति जो सामाजिक स्थितियाँ बदलने के लिए संघर्ष करते हैं, अपने दु:खों को व्यापक समाज के दु:खों से जोड़ते हैं। उन्हीं की आत्मकथा सार्थक होती है। यदि अस्पृश्यता, जाति भेद या अर्थाभाव व्यक्त करना ही आत्मकथा है तो दलित समाज की हर स्त्री और हर पुरूष आत्म कथाकार है, हरेक के पास कटु अनुभव है।"[22] श्रीमती विमल थोरात ने प्रस्तुत आत्मकथा के संदर्भ में अपने वक्तव्य में मराठी के आत्मकथाकारों खासकर दयापवार से जोड़कर इस आत्मकथा पर प्रकाश ड़ाला है। प्रस्तुत आत्मकथा की लोकार्पणविधि में कार्यक्रम की संचालिका रजतरानी "मीनू" ने कहा – मैं दलित साहित्य की शोधछात्रा होने के नाते जानती हूँ कि हिन्दी साहित्य में मोहनदास नैमिशराय और ओमप्रकाश वाल्मीकि की आत्मकथाओं का क्या प्रभाव पड़ा है और बैसंत्रीजी की आत्मकथा इस दिशा में क्या खास योगदान करेगी? मेरा अनुमान है कि यह स्त्रियों के लिए अत्यंत प्रेरणादायी होगी"।[23]

बांग्ला लेखिका तस्लीमा नसरीन की "मेरे बचपन के दिन" उनकी आत्मकथा का प्रथम खंड़ है। अपनी वंश परम्परा के साथ जन्म से लेकर 13 वर्षो की गाथा लेखिका इसमें कहती है। तस्लीमा नसरीन की आत्मकथा घर परिवार के कोनों से लेकर समाज देश देशांतर के परिवर्तनकारी रहस्यों को उद्घाटित करती है। तस्लीमा के भीतरी व्यक्तित्व के विकास के साथ आध्यात्मिक, सांस्कृतिक, राजनैतिक और सामाजिक परिवेश यहाँ बखूबी संजोया हुआ है। परिवेश आत्मकथा में इस प्रकार सन्निहित है कि लोकसंघर्ष, राष्ट्रीय समस्याएँ, बांग्लामुक्ति संघर्ष और युद्ध यह सब लेखिका के आत्मा के अंग बनकर आये हैं। बारहवीं उल अब्बल के पाक दिन जन्म लेने के कारण इन्हें सच्चा मुसलमान बनाने के खाला के प्रयत्नों ने उनके बचपन को किस तरह प्रभावित किया, इसके ब्यौरे लेखिका के निर्भीक व्यकितत्व की पहचान कराते हैं। डॉक्तर पिता और धर्माँध माता के बराबर अपने संस्कार ड़ालने के प्रयत्न में पिता का कहना खूब पढ़ो और पढ़ाने के इस प्रकिया में उनका क्रूर हो जाना, माँ का बच्ची को पाक मुसलमान बनाने के आग्रह में निर्मम हो जाना, दोनों की विसंगति लेखिका को प्रभावित करती है।

लड़की होने के कारण उनके ऊपर लगाए गये निषेध उन्हें खलते थे। कुरान में लिखी गई, बातों में उन्हें वैपरित्य मिलता था। "हदिस" में वर्णित स्त्री-पुरूष के अधिकारों की विषमता न केवल बालिका तस्लीम को चकित करती है अपितु उसके बालमस्तिष्क में प्रश्नों के बीजों को बोती है, जिसके फलस्वरूप उन्हें भविष्य में निर्वासन का दंड़ भोगना पड़ा। संक्षेप में "बचपन के दिन में" हमें तस्लीमा के बचपन के साफ अक्स नजर आते हैं।[24]

21 वीं शताब्दी के प्रथम दशक में समकालीन लेखिकाओं की जो आत्मकथाएँ प्रकाशित हुई हैं उनमें निम्नलिखित उल्लेखनीय हैं। "मेरी जिंदगी चेखव भी" "हादसे", "इन्द्रधनुष के पीछे-पीछे", "आलो अंधारी", "एक अनपढ़ कहानी", "खिड़की के पास वाली जगह", "एक कहानी यह भी", "अन्या से अनन्या", "सोबती बैद संवाद", इन - बिन ..... "चेतना के कोलंबस", "पिंजरे की मैना", "यादें", "कस्तूरी कुंडल बसै", "गुड़िया भीतर गुड़िया आदि-आदि। लिडिया - एविलो महान रूसी कथाकार चेखव की प्रेमिका है। "मेरी जिंदगी चेखव भी" उसकी आत्मकथा है। परंतु यह कथा जितनी लिडिया की है उससे ज्यादा चेखव की भी है। इस आत्मकथा से लिडिया और चेखव के अंतर्संबधों पर तो प्रकाश पड़ता ही है। तत्कालीन रूसी समाज की सामाजिक, राजनीतिक परिस्थितियों पर भी प्रकाश पड़ता है। यह एक अनूदित आत्मकथा है। रमणिका गुप्ता दलित स्त्री लेखिकाओं में एक महत्वपूर्ण हस्ताक्षर है। उनकी आत्मकथा "हादसे" अपने नाम से ही बहुत कुछ कह जाती है। दलित स्त्रियों का जीवन हादसों की एक अनवरत कुयात्रा के अलावा क्या हो सकता है? "इन्द्रधनुष के पीछे पीछे" आर. अनुराधा की आत्मकथा है जिसमें नारी जीवन के कुछ अभिशप्त पहलुओं को ऊजागर किया गया है। "आलो अंधारी" तथा "एक अनपढ़ कहानी" क्रमशः बेबी हाल्दार और सुशीलाराय की आत्मकथाएँ हैं जिनमें नारीजीवन के उपेक्षित पक्षों को दर्द के साथ उकेरा गया हैं। इधर की लेखिकाओं में लता शर्मा भी एक उल्लेखनीय नाम है। उनकी आत्मकथा "खिड़की के पास वाली जगह" एक महत्वपूर्ण कृति है। मध्यवर्गीय समाज में जहाँ लड़की के बाहर आने-जाने पर न जाने कितनी रोक-टोक होती है, वहाँ ये खिड़की के पास वाली जगह ही तो उसे बाहरी हलचलों से कुछ आंदोलित कर सकती है। "सोबती वैद संवाद" कृष्णा सोबती ओर कृष्ण बलदेव वैद के बीच के संवादों को उद्घाटित करती है। उसे एक पूर्ण आत्मकथा न कहते हुए खंड़शः आत्मकथा कह सकते हैं। जिसके द्वारा कमज़कम कृष्णासोबती और कृष्ण बलदेव वैद के साहित्यिक जीवन पर तो प्रकाश पड़ता ही है, तत्कालीन साहित्यिक परिवेश की कुछ अनकही बातें भी ऊजागर होती है। वैसे पद्मा सचदेव की "बूंदबावडी" बहुत चर्चित रही है। परतुं उनकी "इन बिन....." भी आत्मकथा के कुछ अंशो को प्रकट करती है। उसी तरह, "कुसुम अंसल" की आत्मकथा "जो कहाँ नहीं गया" प्रकट हुयी है। परतुं उनकी चेतना का कोलबंस भी उनके जीवन के कुछ पक्षों को उद्घाटित करती है। चंद्रकिरण सोनरेक्शा हिन्दी की एक महत्वपूर्ण कथा

लेखिका है। उनकी कहानियों में नारी विमर्श की अनेक बातें गहराई से अभिव्यक्त हुयी हैं। उनकी आत्मकथा "पिंजरे की मैना" शीर्षक ही बड़ा प्रतीतात्मक है। हमारे "यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते" वाले समाज में सभ्रांत परिवारों में स्त्री की स्थिति पिंजरे की मैना के अलावा क्या है? घर के महत्वपूर्ण निर्णयों में उसका कोई स्थान नहीं होता, हाँ बुढ़िया हो जाने पर कभी कभार उसको पूछकर गौरवान्वित करने का नाटक अवश्य किया जाता है एक सुप्रसिद्ध उर्दू लेखिका हमीदा सलीम की आत्मकथा "यादें" भी उल्लेखनीय रचना है। जिसमें मुस्लिम समाज में स्त्रियो की जो स्थिति है उसके कुछ पक्षों को उद्घाटित किया गया है। "छिन्नमस्ता" उपन्यास से जिन्होंने अपनी विशेष पहचान बनायी है ऐसी सशक्त समकालीन हिन्दी कथाकार प्रभा खेतान की चर्चा के बिना नारीविमर्श अधूरा और अपूर्ण लगता है। रूढिचुस्त मारवाडी समाज में पैदा होकर भी उन्होंने नारी मुक्ति के लिए जो संघर्ष किया है वह बेमिसाल है। एक छोटे पैमाने पर एक्सपोर्ट इम्पोर्ट का व्यवसाय शुरू कर के उसे आंतरराष्ट्रीय स्तर पर पहुँचाना प्रभा खेतान की व्यावसायिक सूझ-बूझ का परिणाम है। परिवारों में होनेवाली धोखा धड़ियों का शिकार होकर उनका परिवार जब रास्ते पर आ जाता है तो प्रभा खेतान ही उसे पुनः ऊँचाइयों पर ले जाती है। इन सब कारगुजारियों में प्रभा अविवाहित रहती है। अविवाहित रहने के पीछे प्रभा का प्रेम प्रकरण भी है। अपने पारिवारिक विवाहित डॉक्टर से जिसे प्रभा डॉक्टर साहब कहती थी, डॉ. से प्रभाजी को प्रेम था। उन दोनों के इस प्रेम को डॉक्टर साहब की पत्नी भी जानती थी और उसने भी इन संबधो पर स्वीकृति की मोहर लगायी थी। और यहाँ तक कि डाक्टर साहब को जब असाध्य बीमारी हो जाती है तब उसे विदेश इलाज के लिए ले जाने का उत्तरदायित्व भी वह "दीदी" को देती है। प्रभाजी ने अपनी आत्मकथा "अन्या से अनन्या" में किसी बात को छिपाया नहीं है। अपने इस प्रेम-प्रकरण को भी नहीं। पैसा कमाना उनकी पारिवारिक जरूरत थी। एक ऊँचे प्रतिष्ठित व्यावसायिक परिवार को बैठा करना था, अतः पूरी लगन से वह उसमें जुट जाती है। प्रायः व्यावसायिक लोग नीरस और जड़ होते है। परंतु डॉक्टर साहब से प्रेम करनेवाली प्रभा ने अपनी संवेदनाओं को भी बरकरार रखा था। उनकी संवेदनाएँ उनके कथा साहित्य में भी ऊजागर हुई हैं। "अन्या से अनन्या" की तुलना बरबस अमृताप्रीतम के "रसीदी टिकट" से हो जाती है क्योंकि "रसीदी टिकट" में अमृता प्रीतमने अपने तथा साहिर लुधियानवी के प्रेम को खुलकर अभिव्यक्त किया है। सुप्रसिद्ध अस्तित्ववादी लेखक ज्यॉं-पॉल-सार्त्र की प्रेमिका "सिमोन बाउवार के सुप्रसिद्ध ग्रंथ "द सेकंड सेक्स" का अनुवाद भी प्रभा खेतान "स्त्री उपेक्षिता" के रूप में किया है। इस प्रकार एक व्यावसायिक प्रतिष्ठान की स्थापना के द्वारा प्रभाजी न केवल अपने घर-परिवार को ऊबारती है बल्कि अनेक साहित्यिक संस्थाओं को भी अनुदान देकर उनको पल्लवित एवम् पुष्पित करने में उनका विशेष योगदान रहा है। उनके निधन पर राजेन्द्र यादव ने कहा था कि उनके जाने से हंस का एक स्थायी आर्थिक आधार टूट गया है।[25] प्रभा खेतान के संदर्भ में उर्दू का एक शेर स्मृति में क्रौंध रहा है – "उठतों को गिराना तो सबको आता है, मज़ा तो जब है गिरते को थाम ले साक़ी।" कहना

न होगा कि प्रभाजी एक ऐसी "साक्षी" है जिन्होंने अनेक गिरतों को उठाया है । इन सब कारणों से "अन्या से अनन्या" एक पठनीय कृति हो जाती है । उसके संदर्भ में आत्मकथा के मुखपृष्ठ पर लिखा गया है – "भारतीय साहित्य की विलक्षण बुद्धजीवी डॉ. प्रभा खेतान दर्शन, अर्थशास्त्र, समाजशास्त्र, विश्व-बाजार और उद्योगजगत की गहरी जानकार है और सब से बढ़कर है – सक्रिय स्त्रीवादी लेखिका । उन्होंने विश्व के लगभग सारे स्त्रीवादी लेखन को घोट ही नहीं डाला, बल्कि अपने समाज में उपनिवेशित स्त्री के शोषण, मनोविज्ञान, मुक्ति के संघर्ष पर विचारोत्तेजक लेखन भी किया..... और उसी क्रम में उन्होंने लिखी है यह आत्मकथा – "अन्या से अनन्या" । हंस में धारावाहिक रूप से प्रकाशित इस आत्मकथा को जहाँ एक बोल्ड और निर्भीक आत्म स्वीकृति की साहसिक गाथा के रूप में अंकुठ प्रशंसाएँ मिली हैं वहाँ बेशर्म और निर्लज्ज स्त्री द्वारा अपने आप को चौराहे पर नंगा करने की कुत्सित बेशर्मी का नाम भी दिया गया है ।[26]

प्रभा खेतान की उक्त आत्मकथा के संदर्भ में डॉ. सुधा अरोड़ा ने कुछ प्रश्न उपस्थित किए है । यथा – "प्रभा खेतान की "अन्या से अनन्या" की काफी चर्चा हुई क्योंकि उन्होंने खुलकर विवाहित पुरूष से अपने प्रेमसंबध की चर्चा की, राजेन्द्रजी ने प्रभा खेतान से अपनी मित्रता को सार्त्र और सिमोन के संबंधों को बरअक्स रखा । मुझे हैरानी तब होती है जब मैं देखती हूँ कि प्रभा खेतान की आत्मकथा "अन्या से अनन्या" के बारे में प्रकाशित तमाम समीक्षकों में एक भी आलोचक ने यह सवाल नहीं उठाया कि सहजीवन निभानेवाले जिन अपने प्रेमी डॉक्टर गोपाल कृष्ण सर्राफ के बारे में उन्होंने इतने विस्तार से लिखा है, वह संवेदनशील लेखिका जरा अपनी समदुखीनी, पाँच बच्चो की माँ डॉक्टर शराफ की पत्नी की पीड़ा-यातना के बारे में भी कुछ लिखती कि पति को अन्या के पास जाता देखकर उन महिला पर क्या बीतती होगी?"[27] ध्यान रहें की डॉ. सुधा अरोड़ा की यह टिप्पणी "एक कहानी यह भी" (मन्नू भंडारी) समीक्षा के संदर्भ में आयी है । "हंस" के 2010 के मार्च अंक में "आत्मा का आईना" नामक आलेख में हिन्दी के सुप्रसिद्ध समीक्षक डॉ. मेनेजर पाण्डेय ने मन्नूजी की उक्त रचना की बेहतरीन विश्लेषणात्मक समीक्षा की है । परंतु आलेख के अंत में एक नुक्ताचीनी वे करते हैं कि मन्नूजी को "मीता" के संदर्भ में भी, उसके दुःख, दर्द को भी, आलेखित करना चाहिए था ।" परवर्ती पृष्ठों में इस पर मन्नूजी की आत्मकथा – "एक कहानी यह भी" - के संदर्भ में विस्तार से चर्चा की गयी है ।

मन्नू भण्ड़ारी कथा जगत की एक सशक्त हस्ताक्षर है । ज्ञानपीठ पुरस्कार विजेता बंगला कथाकार तथा Activist महाश्वेतादेवी ने मन्नूजी के संदर्भ में लिखा है – "मन्नू ने महाभोज, आपका बंटी के अलावा स्वामी और कलेवा जैसे उत्कृष्ट उपन्यास लिखे । उन्होंने राजेन्द्रयादव के साथ "एक इंच मुस्कान" उपन्यास लिखा । मन्नु ने "त्रिशंकु", "एक प्लेट" "सैलाब", "मैं हार गयी", "तीन निगाहों की एक तस्वीर", "यही

सच है", "श्रेष्ठ कहानियाँ", "आँखों देखा झूठ" जैसे कहानी संग्रह दिए। उन्होंने "बिना दीवारों के घर" जैसा नाटक भी लिखा। इधर के वर्षों में मन्नू की कोई नयी किताब मेरे देखने में नहीं आयी, जिस लेखिका के पास संतुलित दृष्टि है, शैली है उससे उम्मीद थी कि वह और ज्यादा रचती और साहित्य का भंडार समृद्ध करती। मन्नू से मेरी यही प्रत्याशा रही है, किन्तु उस पर वह खरी नहीं उतर रही, उसका मुझे दुःख है। लेखन का संस्कार उन्हें विरासत में मिला। उस पैतृकदाय के प्रति वह न्याय नहीं कर पा रही है। 76 वर्ष की उमर कोई ज्यादा नहीं होती है। यह सही है कि मन्नू भण्ड़ारी ने जो भी काम किया तन्मयता, गहरी संलग्नता और ईमानदारी से किया। चाहे अध्यापन का काम रहा हो या लेखन का। यह भी सही है कि उन्होंने कम किन्तु क्लासिक लिखा। पर वह नाकाफ़ी है मुझे तो यही लगता है।"[28] मन्नूजी जैसी एक अत्यंत संवेदनशील एवम् उर्जासंपन्न लेखिका एक लंबे अरसे तक चुप्पी साध लेती है तो वह चिंता का विषय होता ही है एक सच्चे लेखक के लिए न लिख पाने का दर्द या चूक जाने का दर्द असहनीय होता है। हेंमिग्वे की आत्महत्या का यही कारण था। हिन्दी साहित्य जगत के लिए यह एक खुशी की बात है कि मन्नूजी की यह चुप्पी टूटी है, "एक कहानी यह भी" जैसी कृति के द्वारा, मन्नू भण्ड़ारी का मानना है कि एक सृजनशील लेखक को आत्मकथा लेखन से अलग रहना चाहिए क्योंकि अपने संदर्भ में बहुत सी बातें वह अपनी कथाओं में ही लिख चुका होता है। अपने ही जीवन का कोई न कोई अंश उसमें जरूर आता है। कहानी भले ही दूसरे की हो, लेकिन जब तक मैं उसे अपनी नहीं बना लेती हूँ (मेरा भी कोई आयाम जुड ही जाता है।) तब तक लिखूंगी कैसे?[29] शायद इसीलिए मन्नूजी इस आत्मकथा अंश को आत्मकथ्य कहती हैं। राजेन्द्र यादव भी आत्मकथा के नाम पर "न, न" करते रहे हैं। परंतु आखिरकार उन्होंने भी अपना आत्मकथ्य "मुड़ मुड़ के देखता हूँ" के रूप में लिखा हैं। डॉ. रोहिणी अग्रवाल का इस संदर्भ में कहना है – "हकीकत है कि दोनों ने अपने अपने आत्मकथ्य क्रमशः "एक कहानी यह भी", और "मुड़ – मुड़ के देखता हूँ" में अपनी आत्मस्वीकृतियों और आत्म संस्मरणों को "Self Justification" देने का प्रयास किया है। बल्कि कहना यों चाहिए कि राजेन्द्र यादव का "मुड़ – मुड़ के देखता हूँ" का यह प्रतिवादी मन्नू की ओर से दाखिल जवाबदावा है।[30] जहाँ डॉ. रोहिणी अग्रवाल इसे कटघरों में खड़े अहम् की टकराहट मानती है, वहाँ डॉ. मनीषा ठक्कर इस आत्मकथा को "अपराजित लेखकीय जिजीविषा की अदम्य कहानी" मानती है। डॉ. रोहिणी अग्रवाल "एक कहानी यह भी" को कांता भारती द्वारा लिखित "रेत की मछली" (उपन्यास) जैसी औसत रचना मानती है। इस संदर्भ में डॉ. मनीषा ठक्कर लिखती हैं – "किन्तु एक आत्मकथा के रूप में, भले ही "एक कहानी यह भी" मन्नू की "आपका बंटी" या "महाभोज" या उनकी कुछ एक कहानियों की तरह क्लासिक रचना न बन पायी हो, उसे एक औसत रचना कहना शायद एक आत्यंतिक कथन होगा। तहमीना दुरानी के "मेरे आका", अमृता प्रीतम के "रशीदी टिकट", प्रभा खेतान के "अन्या से अनन्या" या मैत्रेयी

के, "कस्तूरी कुंडल बसै" या "गुड़िया भीतर गुड़िया" की तुलना में "एक कहानी यह भी कुछ कमजोर रचना लग सकती है; परंतु आरोपों और प्रत्यारोपों का पुलिंदा मात्र तो वह नहीं ही है, क्योंकि स्वयं रचना में कुछ साक्ष्य कथन मिलते हैं, जिनसे न केवल राजेन्द्र अपितु मन्नू भी चेतना के कटघरे में खड़ी है। जहाँ उनकी वस्तुपरक विश्लेषण शक्ति के दर्शन होते हैं।"[31] "एक कहानी यह भी" के मुखपृष्ठ पर प्रकाशकीय, निवेदन के रूप में लिखा गया है – "आपका बंटी" और "महाभोज" जैसे उपन्यास और अनेक बहुचर्चित कहानियों की लेखिका मन्नू भण्डारी इस पुस्तक में अपने लेखकीय जीवन की कहानी कह रही है। यह उनकी आत्मकथा नहीं है, लेकिन इसमें अनेक भावात्मक और सांसारिक जीवन के उन पहलूओं पर भरपूर प्रकाश पड़ता है जो उनकी रचनायात्रा में निर्णायक रहे हैं। एक ख्यातनामा लेखक की जीवन-संगिनी होने का रोमांच और एक जिद्दी पति की पत्नी होने की बाधाएँ। एक तरफ लेखकीय जरूरतें (महत्वाकाक्षाएँ नहीं) और दूसरी तरफ एक घर को सँभालने का बोझिल दायित्व एक घूर आम आदमी की तरह जीने की चाह और महान उपलब्धियों के लिए ललकता आसपास का साहित्यिक वातावरण - ऐसे कई-कई विरोधाभास के बीच में मन्नूजी लगातार गुजरती रहीं, लेकिन उन्होंने अपनी जिजीविषा, अपनी सादगी, आदमीयत और रचना संकल्प को नहीं टूटने दिया। .....यह आत्मस्मरण मन्नूजी की जीवन स्थितियों के साथ साथ उनके दौर की कई साहित्यिक, सामाजिक और राजनैतिक परिस्थितियों पर भी रोशनी डालता है और नयी कहानी दौर की रचनात्मक बेकली और तत्कालीन लेखकों की ऊँचाइयों – नीचाइयों से भी परिचित कराता है।[32]

"हंस" के, मार्च-2010 के अंक मे "आत्मा का आईना" आलेख में वरिष्ठ समीक्षक डॉ. मेनेजर पाण्डेय ने "एक कहानी यह भी" पर बेहद उदारमना होकर बेहतरीन विश्लेषणात्मक समीक्षा की है लेकिन अंत तक आते-आते उनकी आलोचकीय दृष्टि पर पुरूषवादी सोच ने धावा बोल दिया है। उनका एक लंबा पैराग्राफ जिसमें मीता के प्रति गहरी सहानुभूति से उन्होंने एक टिप्पणी दी है।[33] मीता के संदर्भ में डॉ. पाण्डेय लिखते हैं – "इस कहानी में एक पात्र और उससे जुड़ा प्रसंग ऐसा है जिस पर अगर मन्नू परानुभूति या समानुभूति के साथ सोचती और लिखतीं तो उनकी आत्मकथा असाधारण होती। वह पात्र है मीता, जो एक ओर राजेन्द्रयादव के बौद्धिक छल का शिकार हुई है तो दूसरी ओर मन्नू तथा राजेन्द्र के बीच का तनाव और अलगाव का कारण भी है। मेरे सामने सवाल यह है कि क्या मीता के कुछ दुःख-दर्द नहीं होंगे। अगर वे हैं तो उनकी चिंता किसी को नहीं है, न राजेन्द्र को न मन्नू को। मन्नू तो एक स्त्री है और संवेदनशील लेखिका भी। यही नहीं, वे स्वयं राजेन्द्र के छल से पीड़ित स्त्री है, इसलिए उनसे यह उम्मीद की जा सकती है कि वे मीता की पीड़ा को एक समदुखिनी के दर्द को समझने और व्यक्त करने की कोशिश करतीं, लेकिन उन्होंने ऐसा नहीं किया। मीता तो लेखिका

नहीं है, फिर उसके दु:ख - दर्द की कहानी कौन कहेगा? लगता है कि दूसरी असंख्य स्त्रियों की तरह मीता की पीड़ा भी अनकही रह जाएगी।"[34]

इस संदर्भ में डॉ. सुधा अरोड़ा ने अपनी टिप्पणी देते हुए लिखा है – "सबसे पहले मन्नूजी की इस पुस्तक "एक कहानी यह भी" को पढ़ते हुए स्पष्ट कर लिया जाना चाहिए कि यह पुस्तक दाम्पत्य के दैनंदिनी के छलावों में मरती-खपती एक ईष्यालु, स्त्री का सियापा नही: बल्कि इसमें एक स्त्री रचनाकार की बौद्धिक दृष्टि और उस दृष्टि का आलोक भी है जो एक "सामान्य" स्त्री का "रचनाकार" स्त्री में कायांतरण करता है दाम्पत्य के अलावा भी साहित्यिक और सामाजिक अंतर्विरोधों के कई मुद्दों को रचनात्मकता के पार्श्व में रखकर देखेंगे कि इस पुस्तक में वस्तुगत और निरपेक्ष कोशिश है। यहाँ स्त्री के किसी गोपनजगत को खोलकर लोलुप पाठकीय उपभोग के लिए किया गया मुआईना नहीं है बल्कि आत्मसजग भाषा में एक स्त्री रचनाकार के परिवेश की मार्मिक मीमांसा है। लेकिन इसको क्या किया जाए कि हिन्दी साहित्य में आलोचना क्षेत्र के अधिपतियों की आस्वाद ग्रंथि में जादुई यथार्थ (Magical Realism) के बदले आभाषी यथार्थ (Vartual Realism) का चसका लग गया है। यह एक दु:खद स्थिति है कि वे महिला रचनाकारों की आत्मकथाओं में प्रेम के पुराने त्रिकोण के रोमांच का अतिरेक में आख्यान सुनने की अपेक्षा रखते हैं और ऐसी तमाम मीताओं की मर्मकथा सुनना चाहते हैं ताकि बौद्धिक लंपटई का साहित्यिकरण कर सके। पुरूष रचनाकारों की आत्मकथा में क्या उन्होंने किसी छूटे हुए प्रसंग या छूटे हुए पात्र को लाने की माँग कभी की है जो लेखक की पत्नी का लपंट प्रेमी रहा हो?[35]

बात जब समकालीन लेखिकाओं की आत्मकथाओं पर चल रही है तो एक पुस्तक जो आत्मकथा नहीं है, उसका ज़िक भी आवश्यक हो जाता है। यह पुस्तक है राजेन्द्र यादव द्वारा संपादित "कथा जगत की बाग़ी मुस्लिम औरतें"। इस पुस्तक में रूकइया सखावत हुसैन, रशीदजहाँ, मुमताजशीरीं, ईस्मत चुगताई, अख्तर कमाल, किश्वर नाहिद, जाहिदा हीना, इल्ताब फातिमा, वाजिदा तबस्सुम, जमिला हासमी, फरखंदा लोधी, खालिदा हुसैन, हाजरा मसरूर, तहमीना दुरानी, शैदा गज़दर, मुस्सरत लुगारी, तस्लीमा नसरीन, नुहुल हुदासाह, नासिरा शर्मा, निगार अजीम, फहमीदा रियाज़, सैयद अकरा बुख़ारी, रसीदा रिज़विया, परवीन आतीक, तरन्नुम रियाज़, ग़जाल जैगम, सुबुदी तारीख, तबस्सुम फातिमा आदि-आदि। मुस्लिम कथाजगत की बागी मुस्लिम औरतों की कहानियों को संकलित किया है। "मुसलमान औरत नाम आते ही घर की चहार दिवारी में बंद या कैद या पर्दे में रहनेवाली एक "खातून" का चेहरा उभरता है अब से कुछ साल पहले तक मुसलमान औंरतो का मिला-जुला यही चेहरा ज़हन में महफूज़ था, किन्तु समय के साथ काले-काले बुर्को के रंग भी बदल गए। कायदे से देखें तो अब भी छोटे-छोटे शहरों की औरतें बुर्का संस्कृति में एक न खत्म होनेवाली घुटन का शिकार है,

लेकिन घुटन से बगावत भी जन्म लेती है और मुसलमान औरतों के बगावत की लंबी दास्तान रही है। ऐसा भी देखा गया है कि "मजहबी फरिजो से जकड़ी शौमो – सलात की पाबंध औरतों ने यकबारगी ही बगावत या जेहाद के बाजू फैलाये और खुली आजाद फिजा में समुद्री पक्षी की तरह उड़ती चली गयीं। लेखन के शुरूआती सफर में ही इन मुस्लिम महिलाओं ने जैसे मर्दो की वर्षो पुरानी हुक्मरानी तौक को अपने गले से उतार फेंका था। यह महज इत्तफाक नहीं है कि मुस्लिम महिलाओंने जब कलम संभाली तो अपनी कलम से तलवार का काम किया। इस तलवार की जद पर पुरूष का, अब-तक का समाज था, वर्षों की गुलामी थी, भेदभाव और कुंठा से जन्मा भयानक पीड़ा देनेवाला एहसास था।[36] इनमें से कई लेखिकाओं की उर्दू अदब में आत्मकथाएँ भी मिलती हैं। जिनमें से तहमीना दुरानी की आत्मकथा "मेरे आका" का जिक्र पूर्ववर्ती पृष्ठों में हम कर चुके हैं। तस्लीमा नसरीन की आत्मकथा "मेरे बचपन के दिन" का जिक्र भी ऊपर हो चुका है। तस्लीमा की आत्मकथा का दूसरा भाग "द्विखण्ड़िता" इधर बहुत चर्चा में है। मुशरफ आलम ज़ोकी ने इन बागी औरतों के संदर्भ में लिखा है – "साहित्य में ये बागी औरतें बार-बार चिखतीं और चिल्लातीं रही हैं, रशीदजहाँ से लेकर मुमताज शिरी, ईस्मत चुगताई, वाजिदा तबस्सुम, रूकैया सखावत हुसैन, तस्लीमा नसरीन, तहमीना दुरानी, शमरा शगुफ्ता, फहमीदा रियाज़ और किशवर नाहिद तक यह औरतें शताब्दियों के इतिहास में स्वयं को नंगा देखते हुए जब चित्कार करती हैं, तो कलम इतनी तीखी, पैनी और नंगी बन जाती है कि मर्दाना – समाज को डर महसूस होने लगता है। फिर ऐसी किताबों पर सेन्सरशीप और घर में न पढ़ने के लिए पाबंदी लगा दी जाती है। एक जमाना था, शायद नही, जमाना आज भी बहुत से मुस्लिम परिवारों में जिंदा है, जहाँ घर के बड़े ऐसी तहरीरें पढ़ने के लिए मना करते है।[37]

ऐसी ही तेज-तर्रार लेखिका है – मैत्रेयी पुष्पा। बेतवा बहती रही, इदन्नमम् चाक, झूलानट, अल्माकबूतरी, अगनपाखी, विज़न आदि उपन्यासों में मैत्रेयी पुष्पाने बुंदेलखण्ड़ के ग्रामीण अंचल के तेज-तर्रार नारी पात्रों को प्रस्तुत कर के भारतीय समाज के पौंगा पंथी तबकें को चकित कर दिया है। हमारा प्रस्तुत शोध-प्रबंध इन्हीं मैत्रेयी पुष्पा की आत्मकथाओं और उपन्यासों पर केन्द्रित है अतः उनकी विस्तृत चर्चा आगामी अध्यायों में होगी ही – यहाँ उनकी आत्मकथाओं पर बहुत संक्षेप में विचार किया जाएगा। "बहुत संक्षेप में" इस लिए कि तृतीय और चतुर्थ अध्याय में उनकी इन आत्मकथाओं का विस्तृत विवेचन एवम् विश्लेषण होगा। मैत्रेयीजी की आत्मकथाएँ दो खण्ड़ो में आई है – "कस्तूरी कुंडल बसै" और "गुड़िया भीतर गुड़िया" जो क्रमशः सन् 2002 और 2008 में प्रकाशित हुई हैं। "कस्तूरी कुंडल बसै" के प्रकाशकीय वक्तव्य में कहा गया है – हर आत्मकथा एक उपन्यास है और हर उपन्यास एक आत्मकथा। दोनों के बीच "फिक्सन" है, इसी का सहारा लेकर दोनों को अपने को अपनी आप की कैद से निकाल कर दूसरे

के रुप में सामने खड़ा कर लेते है यानी दोनों ही कहीं-न-कहीं सृजनात्मक कथा-घड़ंत है । इधर उपन्यास की निवैयक्तिता और आत्मकथा की वैयक्तिता मिलकर उपन्यासों का नया शिल्प रच रही है । आत्मकथाएँ व्यक्ति की स्फुटित चेतना का जायजा होती है, जबकि उपन्यास व्यवस्था से मुक्ति संघर्ष की व्यक्तिगत कथा है । आत्मकथा पाये हुए विचार की या "सत्य के प्रयोग" की सूची है और उपन्यास विचार का विस्तार और अन्वेषण । जो तत्व किसी आत्मकथा को श्रेष्ट बनाता है वह है उन अंतरंग और लगभग अनछुअे, अकथनीय प्रसंगों का अन्वेषण और स्वीकृति जो व्यक्ति कहानी को विश्वसनीय और आत्मीय बनाती है । हिन्दी में जो गिनी चुनी आत्मकथाएँ है उनमें एकाध को छोड़ दें तो ऐसी कोई नहीं है जिसकी तुलना मराठी या उर्दू की आत्मकथाओं से भी की जा सके । इन्हें पढ़ते हुए कबीर की उक्ति "शीश उतारें भुई धरै" की याद आती है । यह साहसिक तत्व "कस्तूरी कुंडल बसै" में पहली बार दिखायी देता है ।"[38]

स्वयं मैत्रेयी जी प्रस्तुत कृति के संदर्भ में असमंजस में है कि उसे उपन्यास कहा जाय या आपबीती? अपने प्रारंभिक कथन में मैत्रेयीजी लिखती हैं – "यही है हमारी कहानी । मेरी और मेरी माँ की कहानी । आपसी प्रेम, घृणा, लगाव और दुराव की अनुभूतियों से रची कथा में बहुत सी बातें ऐसी हैं जो मेरे जन्म के पहले घटित हो चुकी थीं" । मगर उन बातों को टुकड़ों - टुकड़ों में माताजी ने जब तब बता डाला, जब जब उन्हें अपनी बेटी को स्त्री जीवन के बारे में नए शिरे से समझाना पड़ा..... माँ भी पूरी तरह कहाँ खुलती थी? लेकिन उनकी बेटी उनका लगाव, गुस्सा, लाड, अलगाव, ममता, और निर्मोह हो जाने की एक-एक भंगिमा बचपन में चित्र उतारती रही । हो सकता है, जो घटा हो वो कहानी में ना हो, और जो हो वो जीवन में न घटा हो, मगर यादों में जो मुक्कमल तस्वीरे जिंदा है ; वही कहानी का आधार है – भले वे किसी और से सुनी हों, या अपने परिवार के बारे में किंवदतियाँ रही हों । मेरे लिए तो सबकुछ माँ को निकट जानने की ही पीडा और प्रक्रिया रही और शायद इसीलिए मैं ठोंस यथार्थ की तरह अपने तीखे-मीठे अनुभव लिखकर मुक्ति की आकांक्षा में माताजी रुपी संस्कार को अपने बाहर भीतर को पिछाड़ने खंगालने पर तुली हुई इस कथा को लिख रही थी ।"[39]

मैत्रेयी पुष्पा की उक्त आत्मकथा के संदर्भ में डॉ. सुधा अरोड़ा की निम्नलिखित टिप्पणी भी विचारणीय कही जा सकती है – "आज भारतीय समाज और जीवन में ही नहीं साहित्य में भी मूल्य बदल रहे हैं । अनैतिकता हमें चौकाती नहीं है, आकर्षित करती है, उसका बयान हमें रोमांचकारी" लगता है । दूसरे तमाम मुददों को दरकिनार कर हम ललक कर उस किताब को पढ़ना चाहते हैं, साहित्य का प्रकाशक इस तथ्य से अच्छी तरह वाकिफ है । मैत्रेयी की आत्मकथा का फलैप मेटर देखें – मैत्रेयी ने डॉ. सिद्धार्थ और राजेन्द्र यादव के साथ अपने संबंधों को लगभग आत्महंता, बेबाकी के साथ स्वीकार किया है ।" अंदर पूरी किताब का एक-एक पन्ना पढ़ जाइए आप उस "आत्महंता, बेबाकी

" (!) को ढूंढते रह जाएंगे । इसके उत्तर मे फरवरी 2009 के Outlook में राजेन्द्र यादव की अपनी एक टिप्पणी पर्याप्त है – मैत्रेयी ने मुझे कुछ जरुर जाना होगा पर लिखने में शायद वह चूक गयी हैं । चूकने से ज्यादा कहना चाहिए की वह छिपा गयी है । वह जो इबारत में नही झाँकता, पर पीछे से झाँकता जरुर दिखता है । जाने उसने ऐसा क्यों किया?" (Outlook Feb : 2009 Pg. 75) आत्मकथा लेखन की सबसे बड़ी चुनौती है अपने जीवन, बल्कि कहना चाहिए, अपनी व्यथा से, अपने झेले हुए से एक दूरी बनाने की । आत्मकथा लेखन में स्वं प्रतिबंध (अपना अंकुश) सबसे पहले आड़े आता है । भारतीय समाज में परिवार एक महत्वपूर्ण इकाई है । अगर हम सच बोल रहे हैं तो हमारे परिवार के या करीबी लोग नाराज हो सकते हैं । तो मेरा मानना यह है कि इस तरह के प्रतिबंधों के बीच आत्मकथा नहीं लिखी जानी चाहिए ।[40]

अपने उक्त कथन में डॉ. सुधा अरोड़ा ने प्रकाशकों की निंदनीय प्रवृत्ति को उजागर किया है जो आत्मकथा में नहीं है या कम से कम उस प्रकार नहीं है उसे वे फलेप" पर देते हैं ताकि कुत्सित मनोवृत्तिवाले लोग उसे ज्यादा से ज्यादा पढ़े । वस्तुतः यदि ऐसा होता है तो लेखकीय ईमानदारी का यह तकाजा है कि वह अलग से उसका विरोध करें ।

नारी-शिक्षा और नवजागरण : –

हमारे शोधप्रबंध का विषय मैत्रेयी पुष्पाकी आत्मकथाओं के परिप्रेक्ष्य में उनके उपन्यासों के विश्लेषणात्मक अध्ययन से जुड़ा हुआ है । पूर्ववर्ती पृष्ठों में हिन्दी की अनेक स्वनाम धन्य लेखिकाओं का निर्देश हम कर चुके हैं । कहना न होगा कि यह इसलिए संभव हुआ है कि नवजागरण के तमाम-तमाम समाज सुधारकोंने एक सूर में नारीशिक्षा की आवाज़ को बुलंद किया है । आधुनिककाल, जिसे बहुत से अनुष्ठानपरक धर्मावलंबी, पोंगापंडित कलियुग कहते हैं और जिसकी वह भर्त्सना करते हैं वह युग सचमुच में पूछा जाय तो भारतीय नारियाँ के लिए आर्शीवादरुप प्रमाणित हुआ है, क्योंकि इस आधुनिककाल ने ही नारीशिक्षा के द्वारों को खोल दिया है । इसका अर्थ यह कतई नहीं कि प्राचीन समय में नारीशिक्षा नहीं थीं । परंतु, वह एक सीमित वर्ग तक महदूद थी । बहुजन समाज की अधिकांश स्त्रियाँ शिक्षा के आर्शीवाद से पूर्णतया वंचित थीं ओर जब नारियाँ शिक्षा से वंचित रहेंगी तो उनका लेखिका या कवियित्री होना तो असंभव ही रहेगा । डॉ.एम.एल.गुप्ता तथा डॉ.डी.डी.शर्मा जैसे समाज शास्त्रियों ने भारतीय समाज तथा संस्कृति पर विशेष कार्य किया है । उनके मतानुसार "वैदिक और उत्तर वैदिक काल में स्त्रियों की स्थिति पुरुषों के बराबर रही है तथा उन्हें पुरुषों के समान ही सब अधिकार प्राप्त रहे हैं । धीरे-धीरे पुरुष में अधिकार प्राप्ति की लालसा बढ़ती गई । परिणाम स्वरूप स्मृतिकाल, धर्मशास्त्रकाल तथा मध्यकाल में इनके अधिकार छीनते गये और इन्हें परतंत्र ओर निःसहाय और निर्बल मान लिया गया । परंतु समय ने पलटा खाया । अंग्रेजी

शासनकाल में देश में राजनैतिक और सामाजिक क्षेत्र में जागृति आने लगी । समाज सुधारकों एवम् नेताओं का ध्यान स्त्रियों की स्थिति को सुधारने की ओर गया ।"[41] कहना न होगा कि उपर्युक्त परिच्छेद में जिन अधिकारों की बात कही गई है उसमें स्त्रियों की शिक्षा का अधिकार भी है ।

मनु ने स्वयं कहा है कि स्त्रियाँ कभी भी स्वतंत्र रहने के योग्य नहीं है । बाल्यावस्था में उन्हें पिता, युवावस्था में पति और वृद्धावस्था में पुत्र के संरक्षण में रहना चाहिए । यथा –

"पिता रक्षति कौमारे भर्ता रक्षति यौवने ।
रक्षन्ति स्थविरे पुत्रा न स्त्री स्वातन्त्रयमर्हति ।"[42]

इतिहासकार डॉ.ए.एस.अल्तेकर भारतीय समाज में स्त्रियों के संदर्भ में कहते हैं कि ईसा के 200 वर्ष पूर्व से 1800 वर्ष पश्चात् के करीब २००० वर्षो के काल में स्त्रियों की स्थिति लगातार गिरती गई । यद्यपि माता-पिता उसे दुलारते थे, पति उसे प्रेम करता था और बच्चे उसका आदर करते थे । सती-प्रथा के पुनः प्रचलन, पुनर्विवाह पर प्रतिबंध,पर्दा प्रथा के विस्तार एवम् बहु विवाह की व्यापकता ने उसकी स्थिति को बहुत गिरा दिया था । यह सही है कि मध्यकाल के भारतीय समाज में स्त्रियों की स्थिति काफी निम्न थी ।[43]

डॉ.एम.एल.गुप्ता एवम् डॉ.डी.डी.शर्मा ने स्त्रियों की निम्नस्थिति के लिए जिन कारकों का उल्लेख किया है उनमें स्त्रीशिक्षा की उपेक्षा, कन्यादान का आदर्श, बाल-विवाह, वैवाहिक कुरीतियाँ, संयुक्त परिवार व्यवस्था, पितृसत्ताक (Patriarch), समाज की व्यवस्था, पुरुषों पर अधिक निर्भरता, मुसलमानों के आक्रमण आदि को परिगणित किया जा सकता है ।[44]

स्त्रियों की स्थिति को सुधारने के प्रयत्न में आधुनिकता के अग्रदूत राजा राममोहनराय सबसे आगे थे । आपने सन् 1828 में ब्रह्मसमाज की स्थापना की ओर आप के ही प्रयत्नों से लोर्ड बेण्टिक के समय सन् 1829 में सतीप्रथा कानून द्वारा बंध की गयी । (इस अमानवीय, अधार्मिक, अनैतिक प्रथा को हटाने के लिए राजा राममोहनराय ने न जाने कितने पत्र लोर्ड बेण्टिक को लिखे थे परंतु लगता है, अप्रगतिवादी शक्तियाँ पुनः सक्रिय हो गई हैं । अभी कुछ वर्ष पूर्व राजस्थान में एक स्त्री-राजकुंवर बा सती हो गयी और वहाँ मंदिर भी खड़ा कर दिया'गया है । स्पष्ट है राज्यसरकार की मूकसंमति के बिना यह संभव नहीं है । ये बढ़ रहे "Honour killing" इत्यादि हमारी बात की पुष्टि करते हैं ।) बाल-विवाह समाप्ति तथा विधवा पुर्न-विवाह को प्रचलित करने के लिए भी आपने ऐडी-चोटी का जोर किया । लगभग उसी समय स्वामी दयानंद सरस्वती ने आर्य समाज

की स्थापना द्वारा स्त्री शिक्षा को प्रोत्साहित किया, शिशुविवाह को रोकने तथा पर्दा-प्रथा को समाप्त करने का काफी प्रयास किया। ईश्वरचंद विद्यासागर ने बहुपत्नी विवाह एवम् विधवा पुर्न-विवाह निषेध का विरोध किया। उनके प्रयत्नों के कारण ही सन् 1856 में "विधवा पुर्नविवाह अधिनियम" पास किया गया। आपने स्त्रीशिक्षा के लिए अथक प्रयत्न किया तथा स्त्रियों को उनके अधिकारों के लिए जागृत किया। केशवचंद्र सेन के प्रयत्नों से सन् 1872 में "विशेष विवाह अधिनियम" पारित हुआ। जिसके द्वारा विधवा पुर्नविवाह एवम् आंतरजातीय विवाह को मान्यता प्रदान की गयी। (यह ध्यानार्ह रहेगा कि इधर अंतरजातिय विवाह करनेवालों की हत्या ऑनर कीलिंग के नाम पर हो रही है।) इस अधिनियम के द्वारा एक विवाह प्रथा (monogamy) को अनिवार्य कर दिया गया। पुणे में जब ज्योतिबा फूले तथा उनकी धर्मपत्नी सावित्री बाई फूले ने शिक्षा के लिए बालिकाओं का स्कूल स्थापित किया था, तो उनको वहाँ के ब्राह्मणों का कोपभाजन होना पड़ा था ओर उन पर पत्थर और गोबर फेंका गया था। जहाँ 19 वीं शताब्दी के आरंभ में लड़कियों की शिक्षा के लिए कोई व्यवस्था नहीं थी, वहाँ इस शताब्दी के मध्य में उनके लिए अनेक प्राथमिक स्कूल खोले गए और सन् 1902 में तो विभिन्न शिक्षा संस्थाओं में लड़कियों की संख्या २ लाख ५६ हजार हो गयी। कई स्त्रियाँ तो शिक्षा प्राप्त कर नौकरी तक करने लगीं। बढ़ती हुई स्त्रीशिक्षा ने महिलाओं को अपने अधिकारों के प्रति जागरूक बनाने में विशेष योग दिया। इसी शताब्दी में अनेक महिलाओं जैसे पंड़िता रमाबाई, रमाबाई रानडे, मेडम कामा, तारुदत्त एवम् स्वर्ण कुमारी देवी ने स्त्रियों को अपने अधिकारों के सम्बन्ध में जागृत करने का प्रयत्न किया।[45]

महात्मा गांधी के राजनीति में प्रवेश के उपरांत 20 वीं शताब्दी में जो सुधार आंदोलन हुए उनको हम तीन वर्गों में बाँट सकते है ---

(1) महात्मा गांधी द्वारा सुधार प्रयत्न।
(2) महिला संगठनों द्वारा सुधार प्रयत्न।
(3) संवैधानिक सुधार प्रयत्न।

(1) **<u>महात्मा गांधी द्वारा महिलाओं के लिए किए गए सुधार प्रयत्न :-</u>**

नवजागरण के उक्त नेताओं के उपरांत जो चेतना आयी उसके फलस्वरूप महात्मा गांधी ने अपने समय में महिलाओं की स्थिति में सुधार के लिए भरसक प्रयत्न किए। उन्होंने हंमेशा स्त्री-पुरुषों की समानता की वकालत की। आपने स्त्रियों को राष्ट्रीय स्वाधीनता आंदोलन में सक्रिय भागीदारी के लिए भी प्रेरित किया। ये उनके प्रयत्नों का ही परिणाम था कि इस समय लाखों स्त्रियों ने स्वतंत्रता आंदोलन में हिस्सेदारी की। इसके फलस्वरूप स्त्रियों ने अपनी शक्ति को पहचाना और अनुभव किया कि वे अबला नहीं अपितु शक्ति का स्त्रोत है।

महात्मा गांधी ने राष्ट्रीय कोंग्रेस के माध्यम से स्त्रियों की स्थिति को सुधारने के संबंध में प्रतिवर्ष ब्रिटिश सरकार के सम्मुख अनेक प्रस्ताव पारित कर उसका ध्यान इस ओर आकर्षित किया । आपने बाल-विवाह और कुलीन विवाह का विरोध किया, साथ ही साथ विधवा पुन-र्विवाह एवम् आंतरजातीय विवाह प्रथा को समर्थन दिया । महात्मा गांधी हंमेशा चाहते रहे हैं कि महिलाओं को समाज में उचित स्थान मिले और उनको उनके मानवीय अधिकार भी प्राप्त हों जिनसे सैकड़ों वर्षो से उन्हें वंचित किया गया था ।[46]

(2) <u>महिला संगठनों द्वारा किए गए सुधार प्रयत्न :-</u>

20 वीं शताब्दी के इस जागरण – वातावरण में अनेक महिला संगठनों की स्थापना हुई जिन्होंने भारतीय महिलाओं में सामाजिक, राजनैतिक, शैक्षणिक चेतना जागृत करने का कार्य किया । उन संगठनों के फल-स्वरुप महिलाओं की स्थिति में सुधार लाने के अनेक महत्वपूर्ण कार्य हुए । यह एक ध्यानार्ह तथ्य है कि महिलाओं की स्थिति में सुधार लाने के इस चेतना यज्ञ में कुछ पाश्चात्य महिलाओं ने भी अपना योगदान दिया । उन महिलाओं के नाम हैं - मारग्रेट नोबल, श्रीमति एनी बेंसण्ट, मारग्रेट कुशनस् । इन महिलाओने भारत में चल रहे स्त्री आंदोलन को अधिक सक्रिय एवम् सशक्त बनाने में काफी योगदान दिया । सन् 1917 में मद्रास (संप्रति चेन्नई) भारतीय महिला समिति (Indian Women Associations) गठित की गई । तदुपरांत विभिन्न महिला संगठनों के प्रयत्नों से देश में "अखिल भारतीय महिला सम्मेलन (Indian Women's Conference) नामक संस्था की स्थापना की गयी । सन् 1927 में पुणे में इसका प्रथम अधिवेशन हुआ । इस संगठन ने नारी शिक्षा को सर्वाधिक प्राथमिकता दी । यह इसी संगठन के प्रयत्नों का परिणाम है कि सन् 1932 में (लेडी इरविन कोलेज) नामक महिला कोलेज की स्थापना दिल्ली में हुई । इसी संगठन के माध्यम से आगे चलकर बाल-विवाह, बहु पत्नी विवाह एवम् दहेजप्रथा आदि के विरोध की मुहीम को चलाया । इन संगठनो ने पुरुषों के समान स्त्रियों के लिए भी संपत्ति के अधिकारों तथा वैयस्क मताधिकार (Adult Franchise) की माँग भी रखी । ध्यान रहे पहले विधवाओं को उसके पति की संपत्ति में कोई अधिकार नहीं था । प्रेमचंद ने "बेटों वाली विधवा" के द्वारा विधवाओं की कहानी तथा "गबन" की विधवा "रतन" की बड़ी दयनीय स्थिति का यथार्थ वर्णन किया है । उपर्युक्त संगठनों के अलावा "विश्वविद्यालय महिला संघ", "भारतीय ईसाई महिला मंडल", "अखिल भारतीय स्त्री शिक्षा संस्था", तथा "कस्तूरबा गांधी स्मारक ट्रस्ट" आदि नारी संगठनों ने स्त्रियों पर थोपी गई निर्योग्यताओं (Disabilities) दूर करने सामाजिक कुरीतियों को समाप्त करने और स्त्री शिक्षा का प्रचार करने की दृष्टि से महत्वपूर्ण कार्य किया । यह एक विचारणीय तथ्य है कि ज्ञान और शिक्षा का प्रकाश ही कुरितियों,

कुरिवाजों, अंधविश्वासों एवम् नारी विरोधी मान्यताओं के अंधकार को हटा सकता है ।[47]

(3) **संवैधानिक प्रयास :** तत्कालीन समाज सुधारकों, नेताओं तथा उपनिर्दिष्ट स्त्री संगठनों के प्रयत्नों से महिलाओं को कुछ संवैधानिक सुविधाएँ प्राप्त हुई और समय-समय पर अनेक ऐसे अधिनियम पारित हुए; जिन्होंने स्त्रियों पर थोपी गई निर्योग्यताओं को दूर करने और उनकी स्थिति को ऊँचा उठाने में महत्वपूर्ण योग दिया । स्वतंत्र भारत के संविधान में स्त्री पुरुषों को बिना किसी भेदभाव के समान अधिकार दिए गए । सन् 1955 में "हिंदू विवाह अधिनियम" पारित किया गया, जिसके द्वारा विवाह क्षेत्र में स्त्रियों को पुरुषों के समान अधिकार दिए गए । इतना ही नहीं विशेष परिस्थितियों में विवाह विच्छेद की व्यवस्था भी की गयी और बहुपत्नी विवाह पर रोक लगा दी गयीं । उसके बाद सन् 1956 में कई महत्वपूर्ण अधिनियम पारित हुए । जिनमें निम्नलिखित मुख्य है – "हिंदू उत्तराधिकार अधिनियम", "हिंदू नाबालिक और संरक्षता अधिनियम", "हिंदू दत्तक ग्रहण और भरणपोषण अधिनियम", "स्त्रियों और कन्याओं का व्यापार निरोधक अधिनियम" । इन अधिनियमों से स्त्रियों की स्थिति में काफी सुधार आया । सन् 1961 में "दहेज-निरोधक अधिनियम पारित किया गया । इन अधिनियमों के पास हो जाने से आंतरजातीय विवाह, विधवा पुनर्विवाह, प्रेम-विवाह को कानूनी मान्यता प्राप्त हुई । इन अधिनियमों के चलते विवाह की न्यूनतम आयु भी लड़के-लड़कियों के लिए क्रमशः 21 वर्ष व 18 वर्ष की हो गयी है । अब एक पत्नी के रहते हुए दूसरी स्त्री से विवाह नहीं किया जा सकता । असाधारण परिस्थितियों में पति-पत्नी को समानरुप से विवाह विच्छेद का अधिकार भी दिया गया है । कहना न होगा कि इन संवैधानिक व्यवस्थाओं से महिलाओं की स्थिति को सुधारने में निश्चित रुप से गुणात्मक परिणाम आया है ।[48]

डॉ. के.एम. पनिकर ने अपने समाज शास्त्रीय ग्रंथ "हिंदू सोसायटी एट क्रोस रोड्स" में लिखा है कि हिंदूओं के कानून ने, न कि अनेक धर्म ने स्त्रियों को सांपत्तिक अधिकारों से वंचित रखा था तथा यौनारंभ के पूर्व लड़कियों को विवाह के लिए बाध्य किया जाता था और विधवाओं के पुनर्विवाह संबंधी अधिकार पर प्रतिबंध लगाया था । किन्तु अब इन तीनों को हिंदू धर्म को प्रभावित किए बिना कानून द्वारा बदला जा चुका है ।[49] डॉ. पनिकर का यह कथन हिंदू धर्म और हिंदू कानून में विभाजक रेखा खींचता है । हिंदू धर्म के बुनयादी सिद्धांत पर्याप्त परिमाण में उदार और व्यापक थे । परंतु धर्म के नाम पर विविध संहिताओं में जो विधि विधान बनाए गए उसके कारण हिंदू स्त्रियों को निर्योग्यताओं का सामना करना पड़ता था ।

20 वीं शताब्दी की ऊपर उल्लिखित सुधारधर्मिता के कारण भारतीय महिलाओं ने प्रत्येक क्षेत्र में गुणात्मक दृष्टि से विकास किया है । सन् 1882 में पढ़ी-लिखी स्त्रियों की

संख्या कुल संख्या 2054 थी जो सन् 1981 में बढ़कर 7 करोड 91 लाख से अधिक हो गई है। सन् 1950-51 में जहाँ स्कूलों में लड़कियों की कुल संख्या 54 लाख थी, वहा सन् 1978-79 में वहाँ संख्या 3 करोड 40 लाख हो गई।[50] सन् 1883 में पहली बार एक स्त्री ने B.A. पास किया। यहाँ 1980 में कोलेज स्तर की शिक्षा प्राप्त करनेवाली लड़कियों की संख्या 7.4 लाख से भी अधिक हो गई। डॉ. पनिकर ने लिखा है कि स्त्रियों की शिक्षा एवम् उनकी राजनैतिक जागृति ने उस कुल्हाड़ी को तेज़ कर दिया; जिसकी सहायता से हिंदू सामाजिक जीवन की जंगली झाड़ियों को साफ करना संभव हो गया।[51] यह प्रगति शिक्षा के सभी क्षेत्रों में हुई यथा - कला, विज्ञान, वाणिज्य, गृहविज्ञान, शिल्पकला, और संगीत।

पूर्ववर्ती पृष्ठों में हम निर्दिष्ट कर चुके हैं कि प्रेमचंदयुग में तेजोरानी दीक्षित, उषादेवी मित्रा, शिवरानी देवी जैसी नारी लेखिकाएँ हमें उपलब्ध होती हैं। कहना न होगा कि यह नारी शिक्षा का ही परिणाम है। शैक्षिक जागृति हमेशा राजनैतिक चेतना को उपक्रमित करती है। एक गणना के अनुसार सन् 1952 में 23 स्त्रियाँ लोकसभा के लिए निर्वाचित हुई थीं। राज्यसभा के लिए 19 स्त्रियाँ मनोनीत हुई थीं। इस संदर्भ में डॉ. पनिकर ने लिखा है कि स्वाधीनता के उपरांत भारत के राजनीतिक और सामाजिक जीवन में महिलाओं ने जो स्थान प्राप्त किया उसे देखकर बाहरी दुनिया के लोग आश्चर्य में पड़ गए क्योंकि वे तो यह सोचने के अभ्यस्त थे कि हिंदू स्त्रियाँ पिछड़ी हुई अशिक्षित और प्रतिक्रियावादी सामाजिक व्यवस्था में जकड़ी हुई हैं। यह महिलाओं में राजनीतिक चेतना का ही परिणाम था कि स्वाधीन भारत में अनेक महिलाएँ राज्यपालों, केबिनेट स्तर के मंत्रियो और राजदूतों के रुप में यश प्राप्त किया। यहाँ तक कि इंदिरा गांधी के रुप में हमें एक सशक्त महिला प्रधानमंत्रीपद के लिए प्राप्त हुई, जिनके लिए कभी आदरणीय भूतपूर्व प्रधानमंत्री अटल बिहारी बाजपेयी ने कहा था कि सदन में यदि कोई "मर्द" है तो वह श्रीमती इंदिरा गांधी है। जिस प्रकार सरदार वल्लभभाई पटेल को "लौह पुरुष" कहा जाता था, ठीक उसी प्रकार इंदिरा गांधी के लिए हम "लौह-महिला" (Iron Lady) शब्द का प्रयोग कर सकते हैं। उत्तर प्रदेश की सुचेता कृपलानी कभी उत्तर प्रदेश की मुख्यमंत्री भी रही हैं। इधर की बात करें तो जयललिता लंबे अरसे तक तमिलनाडु की मुख्यमंत्री रही हैं। संप्रति शीला दीक्षित दिल्ली की मुख्यमंत्री है। ममता बेनर्जी तो दिल्ली केबिनेट मंत्री है (अब बंगाल की मुख्यमंत्री हैं)। सुश्री मायावतीजी उत्तर प्रदेश जैसे राज्य की दो - दो बार मुख्यमंत्री रही हैं। ऐसी अनेक महिलाओं के उदाहरण दिए जा सकते हैं। यह राजनैतिक चेतना शैक्षिक चेतना का ही परिणाम है।

डॉ. मुहम्मद अज़हर ढ़ेरीवाला ने अपने शोध प्रबंध "आधुनिक हिन्दी उपन्यासों में नारी के विविध रूपों का चित्रण" में कुछेक भारतीय महिलाओं का नामोल्लेख किया है जिन्होंने जीवन के किसी – न – किसी क्षेत्र में पहल की है, जो इस प्रकार है -

1. चंद्रमुखी बोस और कादम्बनी बोस : प्रथम महिला स्नातिकाएँ
2. मेडम भिखाजी कामा : प्रथम महिला क्रांतिकारी
3. श्रीमती एनी बेसण्ट : क्रोंग्रेस की प्रथम महिला अध्यक्षा
4. अमृता शेरगिल : प्रथम महिला चित्रकार
5. सरोजिनी नायडू : प्रथम महिला राज्यपाल
6. श्रीमती सुचेता कृपलानी : प्रथम महिला मुख्यमंत्री
7. श्रीमती मारग्रारेट कजिन्स : प्रथम महिला मताधिकार आंदोलन की सूत्रधार
8. श्रीमती विजया लक्ष्मी पंडित : प्रथम महिला राजदूत, प्रथम राष्ट्रसंघ अध्यक्षा
9. डॉ. मुतुलक्ष्मी रेड्डी : प्रथम महिला विधायक (M.L.A.)
10. तैयबा बेगम : प्रथम मुस्लिम स्नातक महिला
11. सुवर्ण कुमारी देवी : प्रथम महिला उपन्यासकार
12. अन्ना राजम् ज्योर्ज : प्रथम महिला I.A.S.
13. श्रीमती किरण बेदी : प्रथम महिला I.P.S.
14. श्रीमती हंसा महेता : प्रथम महिला उपकुलपति
15. श्रीमती इंदिरा गांधी : प्रथम महिला प्रधानमंत्री
16. प्रतिभा आर्य : प्रथम नेत्रहीन स्नातिका
17. ए. ललिता : प्रथम महिला इंजीनियर
18. शांतारानी : प्रथम महिला बैंक मेनेजर
19. डॉ. गीता घोष : प्रथम महिला छाताधारी
20. सुभाषिनी दास गुप्ता : प्रथम महिला सेनाधिकारी
21. डॉ. विद्या कोठेकर : प्रथम महिला नाभीकिय भौतिकी विद्
22. कुमारी आरती शाह : प्रथम इंग्लिश चेनल तैराक महिला
23. श्रीमति ज्योति मेहता : प्रथम महिला वन्य प्राणी विद् ।
24. श्रीमती सवितारानी : अंतरिक्ष विज्ञान और आंतर राष्ट्रीय कानून में प्रथम महिला ।
25. कुमारी पी.टी. उषा : एशिया गेम्स में स्वर्णपदक पानेवाली प्रथम महिला धावक
26. कुमारी कल्पना चावला : प्रथम महिला अवकाश अवरोही ।[52]
27. प्रथम दलित कुलपति : हेमाक्षी राव : Vice Chancellor of Hemchandrachyrya North Gujarat University[53]

अभिप्राय यह कि जीवन के प्रायः सभी क्षेत्रों में शिक्षा के कारण महिलाएँ दिन दूनी रात चौगुनी प्रगति कर रही हैं। पिछले कुछेक वर्षो के गुजरात के 10th और 12th के बोर्ड के परिणामों पर यदि दृष्टिपात करें तो ज्ञात होगा कि बोर्ड में आधे से ज्यादा लड़कियाँ होती हैं। इस साल (2010) 12th में प्रथम गुजरात में आनेवाली लड़की ही थीं। इस तरह

हम देंखते हैं कि लड़कियों में पढ़ाई का और कुछ नया कर गुजरने का माद्दा सविशेष देखा जाता है। यह पिछले सौ डेढ़ सौ वर्षों की नारीजागृति का ही परिणाम है।

❖ नारीजागृति और कुछ लेखिकाएँ :-

न केवल अपने यहाँ परंतु समुचे विश्व में यह नारी चेतना पिछली एक दो शताब्दियों में आयी है। पश्चिम में तो नारीमुक्ति आंदोलन चला है। जिसने स्त्रियों को अपने अधिकारों के लिए पुरूष के आमने-सामने कर दिया है। सिमोन बोउवार की "द सेकण्ड सेक्स" इस पर लिखी एक महत्वपूर्ण किताब है। इसमें सिमोन बोउआरने पूरे विश्व में स्त्रियों का जो दोयम दर्जा है उसके खिलाफ आवाज उठायी है। बार्बरा डेकोर की पुस्तक "The Women's movement" भी एक उल्लेखनीय किताब कही जा सकती है जिसने विश्वभर की स्त्रियों को अपने अधिकारों के लिए लड़ने के लिए ललकारा है। पश्चिमी जगत में उद्‌भुत नारी मुक्ति आंदोलन अपनी तमाम शुभकामनाओं के बावजूद अपनी कट्टरवादिता के कारण थोड़ा आलोचनीय रहा है। पुरुषोंने पिछले हजारों साल से स्त्रियों को उनके जायज मानवीय अधिकारों से वंचित रखा है। इसका अर्थ यह कतई नहीं है कि उसका प्रतिशोध लेते हुए पुरुषों और स्त्रियों को एक दूसरे के दुश्मन समझा जाए। वस्तुतः संसार की प्रगति तभी होगी, जब स्त्री और पुरुष हाथ में हाथ मिलाकर एक दूसरे का सहयोग करें और एक-दूसरे के मित्र और जीवनसाथी बनने का प्रयत्न करें। पश्चिम की तुलना में भारतीय नारीवादी लेखिकाओं ने आत्यंतिक पद्धति को न अपनाते हुए कुछ मध्यमार्गीय रास्ते को चुना है, जिसे श्लाघनीय कहा जा सकता है।

नारी जागृति और विमर्श में गुणात्मक परिवर्तन एवम् अभिवृद्धि लाने का श्रेय निम्नलिखित पुस्तकों को भी जाता है।

(1) इन्डियन वुमन : डॉ.हंसा मेहता : बुटालाएण्ड कंपनी दिल्ली (2) इन्डियन वुमन इन ट्रासिंसन : गोल्ड स्टेन्ड : न्यूर्योक (3) ध ग्लिमसेज : डॉ.उमा देशपांडे : गुड कम्पेनियन बरोडा। (4) वुमन ध पास्ट, प्रेजण्ट एण्ड फ्युचर : आगस्ट वेबल : नेशनल बुक सेण्टर दिल्ली (5) ध वुमन्स मुवमेण्ट : बॉबरा डेकारेड : हारपरहेन रा पब्लिसर्स : न्युयार्क (6) वुमेन एण्ड़ इक्वेलिटी : चाफे : ओक्सफर्ड युनिवर्सिटी प्रेस न्यूयार्क (7) वीमेन एण्ड़ सोसायटी – इण्डिया : नीरा देसाई, कृष्णाराजा मैत्रेयी : अजन्ता पब्लिशर्स दिल्ली। (8) वीमेन इन पब्लिक एण्टर प्राईसस : डॉ.वंदना भटनागर : जयपुर (9) वीमेन इन ध टवेन्टी एट सेंचुरी - एलिसा बोल्ड़िग : न्यूर्योक (10) वीमेन एण्ड सोसयल चेन्ज इन इण्डिया : जेमा मेस्टोन एवार्ट : हेरिटेज पब्लिसर्स : न्यू दिल्ली (11) औरत के हक मे : तस्लीमा नसरीन वाणी प्रकाशन दिल्ली (12) औरत होने की सजा, अरविंद जैन, विकास पेपर बेंक, गांधीनगर दिल्ली (13) परिधि पर स्त्री : डॉ. मृणाल पाण्ड़ेय : राधा

कृष्ण प्रकाशन दिल्ली (14) भारत की अग्रणी महिलाएँ : डॉ.आशारानी वोरा : आत्मा राय सन्स : दिल्ली (15) भारतीय समाज में नारी : डॉ.नीरा देसाई : मेकमिलन : दिल्ली (16) स्त्री संशब्द संपादिका : सु श्री कमलकुमार : राजकमल प्रकाशन : दिल्ली (17) हिन्दी उपन्यास में कामकाजी महिला : डॉ. रोहिणी अग्रवाल (18) हिन्दी उपन्यास में रुढिमुक्त नारी : डॉ.राजरानी शर्मा (19) जहाँ औरते गढ़ी जाती है। आदि – आदि ।[54] उपर्युक्त पुस्तकों के अतिरिक्त "हंस" तथा वर्तमान साहित्य जैसी प्रगतिवादी पत्रिकाओं ने भी नारी चेतना को विकसित करने में विशिष्ट योगदान दिया है। 'हंस" ने तो 2004 में नारी विमर्श को लेकर एक विशेषांक ही निकाल दिया था। "हंस" का नवम्बर 2009 का अंक - "स्त्री विमर्श" का अगला दौर प्रकाशित हो चुका है जिसमें निम्नसूचित चार मुद्दों पर विशेष बहस हुई है –

* संबंधो की नयी पारिवारिक सामाजिक संरचना
* 1975 से अब तक की यात्रा का पहला चरण : पितृसत्ता के विरुद्ध
* आगे की यात्रा स्त्री का स्वत्व संकल्प और साधन
* स्त्री श्रम : मूल्य और आंकलन ।[55]

नारी शिक्षा तथा ऊपर उल्लिखित पुस्तकों के पठन – पाठन और प्रचार से भारत के नारी समाज में विशेषतः हिन्दी जगत की महिलाओं में जो चेतना प्रस्फुटित हुई है; उससे हिन्दी साहित्य में नारी लेखिकाओं की मानों बाढ़ सी आ गई है । इस संदर्भ में राजेन्द्र यादव ने अपनी संपादकीय में बड़ी ही सार्थक टिप्पणी की है – "जब तक पुरुष इन परनारियों की कहानियाँ लिख रहे थे, तब तक सभी कुछ ठीक-ठाक था, उनका चरित्र और व्यक्तित्व निखर और सँवर रहा था मगर जैसे ही स्त्री ने अपनी भाषा में बोलना ओर लिखना शुरु किया, दूसरे शब्दों में प्रेमिका ने अपनी जबान खोली कि सारी मान-मर्यादाएँ चरमराकर गिर पड़ीं और पुरुष प्रभुत्व के मारे लेखक और विचारक बेवफाई का रोना रोने लगे।"[56]

राजेन्द्र यादव का उक्त कथन "नया ज्ञानोदय" के बेवफाई दो विशेषांक में विभूति नारायण राय का जो इंटरव्यू प्रकाशित हुआ था उसी के संदर्भ में आया था। राय साहब ने अपने कथन में कहा था – "लेखिकाओं में होड़ लगी है । यह साबित करने के लिए कि उनसे बड़ी छिनाल कोई नहीं है । मुझे लगता है कि इधर प्रकाशित बहु प्रमोटेड और ओवर रेटेड लेखिका की आत्म कथात्मक पुस्तक का शीर्षक होना चाहिए "कितने बिस्तरों पर कितनी बार"[57] राय के इस हमले में कृष्णा सोबती प्रभा खेतान, कृष्णा अग्निहोत्री, मृदुलागर्ग, रमणिका गुप्ता आदि कई लेखिकाएँ आ जाती हैं । उनके कथन में प्रयुक्त "छिनाल" शब्द को लेकर इधर सांप्रतिक लेखिकाओं तथा मीड़िया में भारी बावेला मचा हुआ है । वृंदाकरात तथा गिरिजा व्यास से लेकर कृष्णा सोबती, मन्नू भण्ड़ारी, मृदुला

गर्ग, मैत्रेयी पुष्पा आदि सभी राय के खिलाफ बयान दे रही हैं कि श्रीमान विभूति नारायण राय को अंतरराष्ट्रीय हिन्दी विश्वविद्यालय वर्धा के कुलपतिपद से तत्काल हटाया जाना चाहिए।

यह संगठित एवम् शिक्षित महिलाओं के प्रतिरोध का ही परिणाम है कि राय को क्षमायाचना करनी पड़ी है। अपने बचावनामें में राय कहते हैं "छिनाल" भोजपुरी भाषा का शब्द है ओर स्त्री-पुरुष दोनों के लिए इस्तमाल होता है। "छिनाल" शब्द छिन्न + नाल से बना है यानी अपनी जड़ों, परिवेश, परम्पराओं और पतिव्रत से भट्की हुई औरत के लिए यह शब्द प्रयुक्त होता है। प्रेमचन्द ने इस शब्द का इस्तमाल कम से कम सौ बार किया है, इस लिए यह इतना अपमानजनक नहीं है"[58] परंतु राय का यह बचाव बेहद कमजोर और लध्धड़ है। प्रथम तो "छिनाल" शब्द भोजपुरी ही नहीं, गुजराती तथा हिन्दी की कई बोलियों में आया है और भोजपुरी में पुरुष के लिए छिनाल नहीं अपितु "छिनरा" शब्द प्रयुक्त होता हैं, दूसरे "छिनाल" शब्द तद्भव या देशज हो सकता है। तीसरें प्रेमचन्द ने "छिनाल" शब्द का प्रयोग हमेशा बदचलन, पथभ्रष्ट और फ़ाहिसा औरत के लिए किया है। अतः प्रेमचन्द के नाम को बीच में लाना बिल्कुल मुनासिब नहीं है। निश्चय ही छिनाल स्त्री के लिए बेहद अपमानजनक गाली है। अपने कथा – साहित्य में नारी – सम्मान और नारी अस्मिता की बात करनेवाले प्रगतिवादी प्रेमचन्द कभी किसी सम्मानीय स्त्री के लिए ऐसे अभद्र शब्द का प्रयोग नहीं कर सकते थे। चतुर्थतः "छिनाल" शब्द को यदि बख़्श भी दिया जाए तो उसके बाद के अनर्गल वाणी-विलास को क्या कहा जाएगा?

यहाँ एक बात स्पष्ट कर देनी चाहिए कि व्यक्ति या लेखक की विचारधारा एवम् विभावना स्पष्ट होनी चाहिए। एक तरफ प्रगतिवादी होने का दंभ भरना और दूसरी तरफ कुछ दकियानूसी बातों को लेकर इस प्रकार का संकुचित रवैया अपनाना, किसी भी प्रतिष्ठित लेखक या लेखिकाओं को शोभा नहीं देता। यहाँ बरबस मुँशी प्रेमचंद के प्रो.मेहता की स्मृति ताजा हो जाती है, जो कहते हैं कि व्यक्ति को स्पष्ट करना चाहिए कि वह मार्क्सवादी है या नहीं और यदि हैं तो वह उस प्रकार के आचरण का व्यवहार करें। यह समीचीन नहीं है कि अपनी सुविधाओं के लिए कुछ मामलों में तो आप प्रगतिवादी दृष्टिकोण अपनायें और कुछ मामलों में वही अपनी पुरानी संकुचित दकियानूसी सोच को कायम रखें। विभूतिनारायण राय जैसे लेखक से यह ठोस सामंतकालीन मर्दवादी रवैये की आशा नहीं थी। अतः सभी तबकों से उसकी भरपूर और भरसक भर्त्सना करना लेखकीय धर्म बन जाता है।

यहाँ प्रस्तुत मुद्दे की इतनी विस्तृत चर्चा इस लिए की गयी है कि यह चर्चा ही प्रमाण है कि आज की शिक्षित संगठित नारी-विमर्श संपन्न महिला इस प्रकार की बातों को बरदास्त नहीं कर सकती, इतना ही नहीं वह उसके खिलाफ आंदोलन भी छेड़ सकती

है । लद गये वे दिन जब आप नारी के संदर्भ में अनाप-सनाप वाणी विलास करते रहते थे ।

★ शिक्षा और नारीविमर्श :

इधर इस उत्तर आधुनिक युग में मुख्यतया दो विमर्शों की विशेष रुप से चर्चा हो रहीं है । ये दो विमर्श हैं – नारीविमर्श और दलितविमर्श । हमारे शोध प्रबंध का सम्बन्ध नारीविमर्श से है । नारी-विमर्श का सीधा सादा अर्थ यह हो सकता है कि नारी के हितों की, नारी स्वाभिमान की, नारी के सत्व की, नारी – अस्मिता की, नारी के जायज़ मानवीय अधिकारों की मुहिम इसके तहत रहेंगी । इधर एक और शब्द की चर्चा है – नारीवादी चिंतन । नारीविमर्श और नारीवाद में बुनियादी अंतर यह है कि नारीविमर्श में जो खुलापन है, जो लोकतांत्रिक भावना है वह शायद नारीवाद में नहीं है । नारीवाद में एक प्रकार की कट्टरता है । उसमें कटुता, घृणा और प्रति-हिंसा जैसे कारक कार्य करते हैं । अभी तक धर्म, शास्त्र, विधि-विधान, सामाजिक परंपराओं और रूढ़ियों के नाम पर नारी के मानवीय अधिकारों को छीना गया है, उस पर खुली बहस होनी चाहिए । नारी विमर्श का ये तकाजा है । नारीवाद स्त्री को पुरूष के खिलाफ खड़ा करता है । स्त्री और पुरूष प्रकृति के दो अंग हैं । दोनों का समान महत्त्व है । न कोई कमतर न कोई बढ़कर । अभी तक नारी को पुरूष के समकक्ष नहीं समझा जाता था । इसलिए तो सिमोन बोऊआर ने अपने ग्रंथ का नाम रखा था – "सेकण्ड सेक्स" । अतः इस बात का विरोध होना चाहिए । स्त्री और पुरूष को समान और एक दूसरे के पूरक समझने चाहिए । मार्क्सवाद का रवैया इस मामले में बिल्कुल स्पष्ट है । वह स्त्री – पुरूष गैरबराबरी को दूर करना चाहता है । उनके बीच बढ़ती जाने वाली असमानता की कटु भर्त्सना करता है । परंतु वह स्त्री को पुरूष के खिलाफ भड़काता नहीं है । यहाँ एक बात यह भी स्पष्ट होनी चाहिए कि अतीत में किसी ने अन्याय, अत्याचार और शोषण किया है तो अब उसके प्रतिशोध के रूप में उसके साथ अत्याचार, अन्याय और शोषण होना चाहिए, यह तर्क नहीं कुतर्क है । "शैतानिक वर्सिस" के विवादास्पद लेखक सलमान रसदी का एक कथन यहाँ उध्दरणीय रहेगा – The Past is past. It should not burden & cripple the present.[59] नारीविमर्श उसकी इजाजत नहीं देता । नारी-वाद की विभावना को स्पष्ट करने के लिए हम अन्य दो शब्दों को ले रहे हैं – हिंदू और हिंदूत्व । प्रकटतया देखा जाए तो इनमें अभिन्नता दृष्टिगोचर होती है, परंतु इधर जो राजनीतिक प्रवाह बह रहे हैं, उसमें ये दोनों शब्द भिन्नार्थक - व्यंजन हो गए हैं । "हिंदू" शब्द में जहाँ उदारता, सहिष्णुता, व्यापकता जैसे गुण है वहाँ "हिंदूत्व" में एक प्रकार की कट्टरता हैं और किसी भी बात की कट्टरता हमें मानवीयता के निकट नहीं ले जाती । यही बात हम नारीविमर्श और नारीवाद को लेकर कर सकते हैं । नारीवाद में जो कट्टरता है वह नारीविमर्श में नहीं हैं ।

नारीविमर्श के संदर्भ में उपर्युक्त चर्चा इसलिए आवश्यक है कि यह नारीविमर्श नारीशिक्षा का ही प्रतिफल है । यदि आज से सौ – डेढ़ – सौ साल पहले ईश्वरचंद विद्यासागर, ज्योतिबा फूले, सावित्रीबाई फूले, पंडिता रमाबाई जैसे महानुभावों ने नारी-शिक्षा की नींव को न रखा होता तो आज यह महिला-भारती-सदन का निर्माण असंभव था । प्रस्तुत नारीविमर्श भी नारी-शिक्षा के कारण ही संभव हो सका है। जैसे – जैसे नारी सुशिक्षित होती गई, उसकी दृष्टि व्यापक होती गयी, उसने संसार की अन्य शिक्षित महिलाओं के संदर्भ में भी पढ़ा और फलतः उसकी अपनी भूमिका स्पष्ट होती गई, रूढ़ि और परंपरा की बंदिशों से वह न केवल मुक्त हुई बल्कि उसने उन रूढ़ियों और परंपराओं की छानबीन भी की और अपने भीतर जगे नारीविमर्श के विवेक से उसने सारगर्भित बातों को ग्रहण करते हुए नारी-हित विरोधी थोथी बातों को नकार दिया । आज की नारीविमर्श संपन्न लेखिका या कवियत्री को परंपरा विरोधी समझने की गल्ती ना करें, वह केवल उन परंपराओं का विरोध करती है जो अमानवीय है या आज के संदर्भ में अप्रस्तुत हैं । शिक्षा से उत्पन्न इस नारीविमर्श ने उनके सन्मुख एक नया सपना रखा हैं । यहाँ पंजाब के कवि "पाश" की निम्नलिखित पंक्तियों को उद्धृत करना मैं आवश्यक समझती हूँ ---

"पुलिस की मार / सबसे खतरनाक नहीं होती ।

पेट की भूख / सबसे खतरनाक नहीं होती ।

सबसे खतरनाक होता है /चुपचाप घर से निकलना /

और चुपचाप घर को लौट आना ।

सबसे खतरनाक होता है सपनों का मर जाना ।"[60]

किसी भी देश, समाज, संस्कृति, वर्ग के लिए "सपनों का मर जाना" एक खतरनाक परिस्थिति होती है । नारीविमर्श ने कमज़-कम गूँगी, बहरी नारी के मन में सपनों को जगाया है । यह उसकी एक बहुत बड़ी उपलब्धि है ।

नारीविमर्श और लेखिकाओं की आत्मकथाएँ :-

पूर्ववर्ती पृष्ठों में हम आत्मकथा के स्वरूप पर तथा हिन्दी आत्मकथा साहित्य की परंपरा पर विस्तृत चर्चा कर चुके हैं । आत्मकथा साहित्य की परंपरा को निर्दिष्ट करते हुए हमने अनेकानेक हिन्दी लेखकों की आत्मकथाओं का हवाला दिया है । तत्पश्चात

हमने लेखिकाओं के आत्मकथा साहित्य पर भी प्रकाश डाला है । पुरुष लेखकों की आत्मकथाओं और महिला लेखिकाओं की आत्मकथाओं पर यदि तुलनात्मक दृष्टिपात किया जाए तो परिमाणगत एक तथ्य सामने आए बिना नहीं रहेगा । वह तथ्य यह है कि पुरुष लेखकों की आत्मकथाओं का परिमाण महिला लेखिकाओं की आत्मकथा के परिमाण से कम है । लगभग यही बात दलित लेखकों की आत्मकथाओं पर भी लागू होती है । वहाँ भी परिमाण का प्रतिशत कुछ अधिक ही मिलेगा । इसके कारणों की पड़ताल करने पर हमे मनोविज्ञान का सहारा लेना पड़ेगा । इन दोनों तबकों पर धर्म और शास्त्र, रुढ़ि और परंपरा, विधि-विधान आदि के द्वारा अनेक प्रकार की निर्योग्ताएँ (Disabilitees) थोपी गई थीं । यानी एक तरह से ये दोनों तबकों का समाज एक बंध समाज था । अनेक बंदिशों में धिरा हुआ समाज था । डॉ. मीरा रामनिवास द्वारा प्रणीत सद्य प्रकाशित काव्य संग्रह "नया सवेरा" की एक कविता "आधी दुनिया" में नारी की इसी पीड़ा – व्यथा को अभिव्यक्त किया गया है ---

"उड़ना चाहती थी उन्मुक्त होकर पंछी की तरह । बंदिशों के पिजड़े में कैद कर दी गयी । उसके हिस्से का आकाश छीन लिया गया / बनना चाहती थी निश्छल नदी सी मर्यादाओं के बाँधो में सिमटा दी गई / उसके हिस्से की जमीं छीन ली गई / उगना चाहती थी विशाल वृक्ष की तरह / ... उसके हिस्से का जीवन छीन लिया या फिर बना दी गई बोनसाई / "[61]

कवियत्री मीरा रामनिवास की चिंता व्यथा और पीड़ा, इस बात को लेकर है कि संसार की इस "आधी दुनिया" (महिला समाज या महिला तबका) को उसके मानवीय अधिकारों से पढ़ने-लिखने के अधिकारों से दूर रखा गया था ।

यह एक मनोवैज्ञानिक सिद्धांत है कि जिसको तुम ज्यादा दबाओगे अनुकुल समय मिलने पर वह उतना ही ज्यादा उछलेगा । दलित और महिलाओं के साथ यही हुआ है । उनकी वेदनाएँ, उनकी त्रासदियाँ हजारों साल पुरानी हैं, तो इस तथाकथित कलियुग में जब इनके सामने संभावनाओं का सपनों का एक आकाश खुला है तो यह स्वाभाविक एवम् मनोवैज्ञानिक है कि उनके भीतर की "अहिल्या" पिघलेगी । उसकी वाणी से आक्रोश भी फूट सकता हैं । नारीशिक्षा के कारण ही नारीवाद, नारीवाद चिंतन तथा नारीविमर्श जैसी विभावनाएँ समुपस्थित हुई हैं । प्रेमचंदयुग उसका प्रारंभिक दौर था, अतः वहाँ नारी लेखन तो मिलता है । उषादेवी मित्रा, तेजोरानी दीक्षित, शिवरानी देवी जैसी कुछ उपन्यास लेखिकाएँ भी उपस्थित होती हैं, परंतु वह स्वर कुछ दबा हुआ सा था । नारीविमर्श तब इतना अधिक प्रखर होकर सामने नहीं आया था । अतः साठोत्तरी उपन्यासों या समकालीन उपन्यासों के दौर में नारी का स्वर अधिक सशक्त, अधिक आत्मविश्वासदिप्त और

अधिक प्रखर होकर आया है । महिला आत्मकथाओं का सृजन भी उसी का परिणाम हैं । इतिहास में घटनाओं के घटित होने में एक निश्चित तार्किक क्रम होता है । कोई एक घटना घटित होती है । उसके परिणाम स्वरूप दूसरी घटना घटित होती है और फिर तीसरी, चौथी यों तो यह सिलसिला आगे बढ़ता है । हमारे कहने का अभिप्राय यह है कि नवजागरण ने नारी शिक्षा के मुद्दे को आगे बढ़ाया, नारी शिक्षा के कारण ही नारीविमर्श आया और इस नारीविमर्श के कारण ही नारियों ने आत्मकथा जैसा साहित्य प्रकार लिखने का साहस जुटाया । इधर की समकालीन नारी लेखिकाएँ अपने जीवन के अंतरंग प्रसंगों की चर्चा से भी गुरेच करती नहीं है । शायद इसीलिए विभूतिनारायण राय जैसे लोग अपनी बौखलाहट में ऐसी लेखिकाओं को "छिनाल" तक कहने का दु:साहस कर बैठते हैं । हमें संतोष है कि समकालीन लेखिकाओं की ओर से उसका जोरदार, करारा विरोध हो रहा है । ध्यान रहे विभूतिनारायण राय का पूर्व उल्लेखित कथन भी प्राय: महिलाओं द्वारा लिखी जानेवाली आत्मकथाओं के संदर्भ में ही है ।

इधर Shania Twain की Auto Biography के संदर्भ में तथा दलित लेखकों की आत्मकथा के संदर्भ में एक महत्वपूर्ण वक्तव्य आया है – Auto-biographies are often drafts of history both personal and public. In the Indian context, auto biographies Paved the way for the emergence of a broad category called dalit literature. Many of these testimonials were by first time writers. These books were not testimonials of great men, but broken people reflecting on cruel and unjust social Institutions and customs and the pain of living under them. Not to forget, some of these were beautifully crafted as well."[62]

> उपर्युक्त कथन यद्यपि दलित आत्मकथाकारों के संदर्भ में आया है, तथापि यह कथन महिला लेखिकाओं की आत्मकथा के संदर्भ में भी उतना ही सत्य है ।

निष्कर्ष : अध्याय के समग्रावलोकन से हम निम्नलिखित निष्कर्ष तक सहजतया पहुँच सकते हैं –

(1) आत्मकथा विधा गद्य की एक प्रमुख विधा है । आत्मकथा और जीवनकथा या जीवनी में मुख्य अंतर यह है कि आत्मकथा में कोई व्यक्ति अपने जीवन के संदर्भ में अपनी ही कथा को प्रस्तुत करता है । दूसरी ओर जीवनी में किसी व्यक्ति के जीवन को लेकर कोई दूसरा व्यक्ति उसके जीवन का आलेखन और आंकलन करता है । दूसरे शब्दों में कहें तो आत्मकथा में कथानायक और लेखक एक ही होता है जब कि जीवनी में कथानायक और लेखक भिन्न-भिन्न होते हैं । आत्मकथा को अंग्रेजी में "Autobiography" और जीवनी को "Biography" कहा गया है ।

(2) कथा और जीवन प्रसंग तो उपन्यास में भी होते हैं पर उपन्यास की गणना "फिक्सन" (कल्पना प्रसूत) होती है जब कि आत्मकथा काल्पनिक नहीं अपितु वास्तविक घटनाओं और प्रसंगों पर आधारित होती है।

(3) सामाजिक और राजनीतिक दायित्वबोध की दृष्टि से आत्मकथा का लेखन अत्यंत विकट कार्य है। जिस प्रकार नट रस्सी पर चलता है उसी प्रकार का संतुलन आत्मकथाकार को रखना पड़ता है। इस तरह आत्मकथा लेखन कोई सरल कार्य नहीं अपितु एक अत्यंत मुश्किल कार्य है। आत्मकथा प्राय : ख्यात व्यक्तियों की होती है। आत्मकथाकार यदि समाज सुधारक, देशनेता या कोई संत, साधु – महात्मा होता है तो उनकी अपनी कथा के साथ साथ समांतर उनके समय की युगीन परिस्थितियों का भी चित्रण होता है। साहित्यकारों की आत्मकथाओं में अन्य समकालीन साहित्यकार तथा साहित्य प्रवाहों की भी चर्चा रहती है।

(4) आत्मकथा लेखन में एक प्रमुख भयस्थान यह होता है कि आत्मकथा लेखक अपने उज्जवलपक्षों की चर्चा तो कर सकता है परंतु जीवन के अनुज्जवलपक्षों और तथ्यों के उद्घाटन का साहस बहुत कम लोग कर पाते हैं। इस संदर्भ में महात्मागांधी की आत्मकथा "सत्य के प्रयोग" तथा अमृता प्रीतम की आत्मकथा "रशीदी टिकट" का उल्लेख किया जा सकता है; जिनमें क्रमशः महात्मा गांधी और अमृता प्रीतम ने अपने जीवन के अनुज्जवल पक्षों को भी उद्घाटित किया है।

(5) आत्मकथा लेखन में संस्मरण, डायरी, पत्र आदि सहायक हो सकते हैं। सफल आत्मकथा लिखना सफल जीवन जीने के समान ही कठिन है। अतः आत्मकथाएँ प्रायः महान लोगों की होती है। किन्तु महान से महान लोगों में भी कुछ कमजोरियाँ पायी जाती हैं, उन कमजोरियों के कारण उनका व्यक्तित्व अपौरुषय या अवतारी पुरुष सा नहीं लगता। परिणामतः उसकी विश्वनीयता बढ़ जाती है।

(6) हिन्दी में आत्मकथा साहित्य की एक सुदीर्घ और संपन्न परम्परा प्राप्त होती है। हिन्दी की प्रथम आत्मकथा अकबर के समकालीन आगरा निवासी जैन कवि बनारसीदासजी की है; जो कि "अर्द्धकथानक" नाम से उपलब्ध होती है। जो पद्य में लिखी गयी है। वस्तुतः आधुनिक आत्मकथा साहित्य का प्रारंभ तो भारतेन्दु-युग से होता है। भारतेन्दु युग में हमें प्रतापनारायण मिश्र और किशोरीलाल गोस्वामीजी की आत्मकथाएँ उपलब्ध होती हैं।

(7) आत्मकथा साहित्य का अक्षुण, अजस्र प्रवाह तो द्विवेदी युग और उसके बाद से होता है। इन आत्मकथाओं को हम दो वर्गों में विभक्त कर सकते हैं।

(क) हिन्दी साहित्यकारों की आत्मकथा

(ख) तत्कालीन नेताओं की आत्मकथा

हिन्दी साहित्यकारों की आत्मकथाओं में महापंडित राहुल सांस्कृत्यायन, यशपाल, सेठ गोविंददास, हरिवंशराय बच्चन, भीष्म साहनी, आदि की आत्मकथाएँ हैं। (विस्तृत सूची – पृष्ठ 12-13) देशनेता तथा समाज सुधारकों की आत्मकथाओं में महात्मा गांधी, सुभाषचंद्र बोस, पंड़ित जवाहरलाल नेहरू आदि की आत्मकथाएँ उपलब्ध होती हैं।

(8) पिछले कुछ दशकों में अनेक हिन्दी साहित्यकारों की आत्मकथाएँ आई हैं जिनमें शरद देवड़ा, काशीनाथसिंह, मोहनदास-नैमिशराय, ओमप्रकाश वाल्मीकि, शरणकुमार लिंबाले, किशोर शांताबाई काले, मोहनराकेश, इस्मत चुगताई आदि की आत्मकथाएँ उल्लेखनीय कहीं जा सकती है।

(9) 21 वीं शताब्दी के प्रथम दशक में स्वदेश-दीपक, चित्रकार, सैयद हैजर रज़ा, संगीतकार वसंत पोतद्दार, विद्यासागर नोटियाल, लक्ष्मीधर मालवी, भीष्म साहनी दयापावर, रूपनारायण सोनवणकर आदि की आत्मकथाएँ उपलब्ध होती हैं। (यहाँ पर हमने समकालीन हिन्दी लेखिकाओं की आत्मकथाओं का जिक्र नहीं किया है।)

(10) समकालीन हिन्दी लेखिकाओं की आत्मकथाओं में कुसुम अंसल, कृष्णा अग्निहोत्री, पद्मा सचदेव, कौशल्या बैसंत्री, मन्नू भण्डारी, मैत्रेयी पुष्पा, प्रभा खेतान, तस्लीमा नसरीन, कृष्णा सोबती, चंद्रकिरण सोनरिक्शा आदि की आत्मकथाएँ बड़ी महत्वपूर्ण आत्मकथाएँ हैं। इस संदर्भ में कुछ मुस्लिम लेखिकाओं की आत्मकथाएँ भी महत्वपूर्ण है।

(11) आधुनिक काल के महिलालेखन और विशेषतः समकालीन हिन्दी लेखिकाओं के आत्मकथा लेखन के संदर्भ में यह सदैव ध्यान रहेगा कि इसके पीछे नवजागरण और नवजागरण से उत्प्रेरित नारीशिक्षा के कारण बड़े महत्वपूर्ण रहे हैं।

(12) नवजागरण के पश्चात् महात्मागांधी तथा महिला संगठनों द्वारा स्थापित अनेक सामाजिक, राजनैतिक संस्थानों ने महिलाओं के सशक्तीकरण में महत्वपूर्ण योगदान दिया है जिनमें संवैधानिक दृष्टि से जो प्रयत्न हुए हैं वे भी बड़े महत्वपूर्ण हैं।

(13) जीवन के सभी क्षेत्रों में महिलाओं ने पुरुषों से कंधे से कंधा मिलाकर कार्य किया है। हमने ऐसी लगभग २७ महिलाओं का उल्लेख किया है जो किसी न किसी क्षेत्र में पहल करनी करनेवाली महिलाओं में रही हैं।

(14) नारीजागृति की मशाल जलाने में आधुनिक काल तथा समकालीन साहित्य की अनेक देशी-विदेशी महिलाओं ने नारीजागरण विषयक जो ग्रंथ लिखे हैं, उन ग्रंथों की भी बड़ी महत्वपूर्ण भूमिका रही है।

(15) उत्तर आधुनिक युग में नारी विमर्श को जगाने में नारी शिक्षा का महत्वपूर्ण योगदान है। नारी यदि शिक्षित और संगठित न होती तो नारी-विमर्श का प्रश्न ही सामने नहीं आता।

(16) समकालीन साहित्य में हिन्दी लेखिकाओं की जो अनेक आत्मकथाएँ उपलब्ध होती हैं, वह ऊपर उल्लिखित नारी-विमर्श का ही परिणाम है। "नारी-विमर्श" और "नारीवाद" में भी अंतर है। "नारी विमर्श" में जहाँ संवाद ओर व्यापकता की भूमिका है; वहाँ नारीवाद में एक प्रकार की कट्टरता का आभास मिलता है।

संदर्भसंकेत

1. हिन्दी साहित्य कोश भाग - 1 : प्रधान संपादक : डॉ. धीरेन्द्र वर्मा : पृ. 98
2. भारतीय साहित्यकोश : संपादक : डॉ. नगेन्द्र : पृ. 94
3. Compact Oxford Reference Dictionary . P. 50
4. काव्य के रूप : डॉ. गुलाबराय : पृ. २३२
5. वही : पृ. 232-233
6. पंडित जवाहरलाल नहेरू लिखित "मेरी कहानी" के अनुवाद से उदधृत : काव्य के रूप : पृ. 233
7. दृष्टव्य : काव्य के रूप : डॉ. गुलाबराय : पृ. 233 – 234
8. वही : पृ. 298
9. दृष्टव्य :वही : पृ. 234
10. दृष्टव्य : वही : पृ. 234
11. दृष्टव्य :हिन्दी साहित्य का इतिहास : डॉ. माधव सोनटक्के : पृ. 345, 460-461
12. दृष्टव्य :हिन्दी साहित्य का इतिहास : डॉ. सोनटक्के पृ. :
13. आज के अतीत : भीष्म साहनी : प्रथम पृष्ठ से।
14. आत्मकथा विषयक तमाम ब्यौरे के लिए मैंने हंस 1991 से अद्यावधि तक के हंस के अंको का उपयोग किया है। विशेषतः प्रत्येक वर्ष के जनवरी अंक को देखा गया है। जिसमें साल भर की साहित्यिक गतिविधियों का लेखा-जोखा रहता है।
15. लेख : अपने आईने में आत्मकथाएँ : निशानाग : हंस : मार्च 2000 पृ. 86
16. "लगता नही है दिल मेरा" : कृष्णा अग्निहोत्री : भूमिका से।
17. दृष्टव्य : हंस : मार्च 2000 : पृ. 96 – 97
18. वही : पृ. 97
19. दृष्टव्य :लेख दलित महिला की पहली आत्मकथा "दोहरा अभिशाप" : टेकचंद मेहताब : हंस : जून 1999 : पृ. 84
20. हंस : मार्च : 2000 : पृ. 97

21. हंस : जून 1999 : पृ. 84

22. वही : पृ. 84

23. वही : पृ. 84

24. दृष्टव्य : हंस मार्च 2000 : पृ. 97

25.

26. दृष्टव्य : हंस : अन्या से अनन्या : प्रभा खेतान : प्रथम मुखपृष्ठ से।

27. डॉ. सुधा अरोड़ा : लेख : क्या पति अपने रकीब को सहानुभूति देंगे? : हंस : अगस्त 2010 : पृ. 130

28. हंस : मई : 2007 : पृ. 20

29. आज-कल सितम्बर – 2004

30. दृष्टव्य :लेख : "एक कहानी यह भी" कटघेर में खंड अहम् : डॉ. रोहिणी अग्रवाल : हंस : मई 2007 : पृ. 84

31. मन्नू भण्डारी की कथायात्रा : संपादक : डॉ. किशोरसिंह राव : लेख "अपराजित लेख" "अपराजित लेखकीय जिजीविषा की अदम्य कहानी : एक कहानी यह भी" : पृ. 103

32. एक कहानी यह भी : प्रकाशकीय वकतव्य : प्रथम मुखपृष्ठ से।

33. डॉ. सुधा अरोड़ा : लेख - "क्या पति अपने रकीब को सहानुभूति देंगे?" : हंस – अगश्त 2010 : पृ. 129

34. हंस : मार्च – 2010 : पृ. 54

35. हंस : अगस्त – 2010 : पृ. 131

36. दृष्टव्य :कथाजगत की बाग़ी मुस्लिम औरते : प्रकाशकीय वकतव्य से।

37. वही : पृ. 25

38. कस्तुरी कुंडल बसै : मैत्रेयी पुष्पा : प्रकाशकीय वकतव्य से।

39. वही : लेखिका का प्रारंभिक वकतव्य – पृ. 5

40. डॉ. सुधा अरोड़ा : हंस – अगस्त 2010 : पृ. 130-131

41. भारतीय समाज तथा संस्कृति : डॉ. एम.एल. गुप्ता तथा डॉ. डी.डी. शर्मा : भारतीय समाज में स्त्रियों की स्थिति विषयक अध्याय : पृ. 356

42. वही : पृ. 360

43. Dr. A.S Altekar · The Position of Women in Hindu Civilization : Dr. A.S. Altekar PP : 342-343

44. दृष्टव्य : "भारतीय समाज तथा संस्कृति : पृ. 362-364

45. दृष्टव्य :वही : पृ. 365

46. दृष्टव्य :वही : पृ. 366

47. दृष्टव्य :प्रस्तुत परिच्छेद में दी गई तथ्य परख सुचनाओं के लिए : वही : पृ. 366

48. दृष्टव्य :वही : पृ. 367

49. See : Dr. K.M. Panikar : Hindu Society at Cross Roads : P-36

50. See · Indian Survey 1982

51. See : Hindu Society at Cross Roads : P-36

See : Ibid : Page 36

52. दृष्टव्य :आधुनिक हिन्दी उपन्यासो में नारी के विविध रूपो का चित्रण : डॉ. मुहम्मद अज़हर देरीवाला पृ. 56

53. प्रथम दलित कुलपति : हेमाक्षी राव : Vice Chancellor of Hemchandracharya North Gujarat University : Times of India : 17-9-2010 : Page-4

54. दृष्टव्य : शैलेष मटियानी की कहानियों में नारी के विविध रूपों का चित्रण (शोध प्रबंध हिन्दी विभाग म.स. विश्वविद्यालय) : डॉ. श्रीमती सुषमा शर्मा : पृ. 353-357

55. हंस : सितम्बर 2010 : मुखपृष्ठ से ।

56. हंस सितम्बर : 2010 : पृ. 5

57. वही : पृ. 5

58. वही : पृ. 5

59. See · Times of India : The thought for Today : 1/10/2010 P : 14

60. स्वामी अग्निवेश द्वारा उद्धत : ये अन्याय हमें स्वीकार नहीं – लेख : हंस – सितम्बर 2010, पृष्ठ : 87

61. नया सवेरा : डॉ. मीरा रामनिवास : पृ. 39

62. Regular Column "Times view and counter view" · Anil Thakkar · Times of India : Date : 25/9/10 P. 12